॥ ओ३म् ॥

श्री गोविन्दराम हासानन्द स्मृतिमाला पु० ४

यजुर्वेद शतकम्

यजुर्वेद के सौ मन्त्रों का अनूठा एवं अपूर्व संकलन

सकलनकर्ता तथा सम्पादक
ब्र० जगदीशचन्द्र 'विद्यार्थी'
विद्यावाचस्पति

गोविन्दराम हासानन्द
४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है
वेद का पढ़ना पढ़ाना और
सुनना सुनाना सब आर्यों का
परम धर्म है

'महर्षि दयानन्द'

प्रथम संस्करण शिवरात्रि १९६१

प्रकाशक गोविन्दराम हासानन्द
४४०८, नई सड़क, दिल्ली।

मुद्रक अनिल प्रिंटिंग ऐजन्सी
द्वारा कलर प्रिंटिंग प्रेस
देहली।

मूल्य एक रुपया

भूमिका

वेद वैदिक संस्कृति के आधार स्तम्भ है। वेद प्रभु प्रदत्त वह ज्ञान है जो सृष्टि के आदि में मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और चारित्रिक उन्नति के पथ प्रदर्शन के लिये मिला था। यह ज्ञान चार ऋषियों को मिला था। ज्ञानस्वरूप प्रभु ने यजुर्वेद का प्रकाश वायु ऋषि के हृदय में कि॰ था।

याज्ञिक-प्रक्रिया मे यजुर्वेद का प्रमुख एव महत्व पूर्ण स्थान है। अत इसे यज्ञ वेद भी कहते है। यज्ञ का एक नाम अध्वर भी है। अत इसे अध्वर्यु-वेद भी कहते है।

चारो वेदो की अपनी अपनी एक विशेषता है उसी विशेषता के अनुसार यजुर्वेद कर्मकाण्ड प्रधान है। यजुर्वेद कर्मवेद है। पहले ही मन्त्र से—

सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे

से श्रेष्ठतम कर्मों के करने का आदेश है। और अन्त मे भी कर्म करने का आदेश है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमा. ।

(यजुर्वेद ४०।२)

इतने अश्लील हैं कि उन्हें सभ्य समाज के समक्ष बैठ कर पढ़ा नही जा सकता इसके विपरीत महर्षि दयानन्द का भाष्य इस अश्लीलता से सर्वथा रहित है। महर्षि का भाष्य वैदिक सत्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन और मनुष्य के दैनिक कर्तव्यो का सन्देश और उपदेश देना है।

इस संग्रह मे महर्षि दयानन्द के भाष्य से १०० मन्त्र प्रकाशित किये जा रहे हैं। प्रत्येक मन्त्र पर एक शीर्षक दे दिया गया है जिस से मन्त्रार्थ समझने में सुविधा होगी। मन्त्रों के अन्त मे जो संख्या दी हुई है वह अध्याय और मन्त्र की सूचक है।

"वेद का पढना पढाना और सुनना सुनाना आर्यो का परम धर्म है।" अपने परम धर्म का का पालन कीजिये प्रतिदिन वेद का स्वाध्याय कीजिये यदि अधिक नही तो एक मन्त्र तो अवश्य ही पढिये। यदि इस संग्रह को पढकर कुछ व्यक्तियों को भी मूल वेद पढने की प्रेरणा हुई तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

वेद सदन
८ ई, कमला नगर, जगदीश चन्द्र विद्यार्थी
दिल्ली-६

गोविन्दराम हासानन्द स्मृति ग्रन्थमाला

स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

पुष्प-४

श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सवत् १६४३ मे शिकारपुर सिन्ध मे प्रसिद्ध गो भक्त श्री हासानन्द जी के गृह को एक बालक ने अपने आलोक से आलोकित किया। यही बालक आगे चलकर गोविन्दराम हासानन्द के नाम से विख्यात हुए।

जिस समय आपकी आयु केवल १७ वर्ष ही थी आप के पिता जी सर्वात्मना गो रक्षा मे लग गये और गृहस्थ का भार इन पर डाल दिया गया।

कलकत्ता मे आजीविका का कार्य करते हुए कुछ मित्रो के ससर्ग से आपका झुकाव आर्य समाज की ओर हो गया। आर्य समाज के प्रति उनका यह प्रेम प्रतिदिन बढता ही गया और इसी प्रेम के कारण अन्त मे उन्हे घर से निकलना पडा।

आपको साहित्य प्रचार की लगन और धुन आरम्भ से थी। जब आपने अपने मित्र के साथ कलकत्ते मे स्वदेशी कपडे की दुकान खोली तो वहा न केवल वैदिक साहित्य ही रखते थे अपितु कैश

मैमो के पीछे ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा सत्यार्थ प्रकाश का विज्ञापन भी बंगला भाषा में छपा देते थे।

श्री गोविन्दराम जी अनेक वर्षों तक आर्य समाज कार्नवालिस स्ट्रीट कलकत्ता के सभासद रहे। समाज का कार्य करते हुए उन्होंने अनुभव किया कि मौखिक प्रचार के साथ साहित्य प्रचार होना भी आवश्यक है। यह विचार उठते ही आप ने अपने मित्रों की सहायता से आरम्भ में आर्य नेताओं के चित्र तथा नमस्ते आदि के मोटो छपवाये फिर दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर सत्यार्थ प्रकाश छपवाया। पहले सत्यार्थ प्रकाश का का मूल्य ढाई रुपया था और फिर भी ग्रन्थ मिलता नहीं था। आप ने मूल्य केवल एक रुपया रक्खा। इस प्रकार सत्यार्थ प्रकाश अल्प मूल्य में मिलने लगा इस सबका श्रेय आप को ही है।

सत्यार्थ प्रकाश के प्रकाशन के पश्चात् तो आप ने साहित्य की एक बाढ़ सी ला दी। अपने कार्य-क्षेत्र को अधिक विस्तृत करने के लिये आप १९३६ में देहली आये और मृत्यु पर्यन्त देहली में ही रहे।

वैदिक साहित्य के प्रकाशन में पग पग पर कठिनाइयां आईं अन्य प्रकाशक मैदान छोड़ कर भाग गये परन्तु आप एक दृढ़ चट्टान की भांति अटल रहे।

आपने वैदिक साहित्य का प्रकाशन ही नहीं किया अपितु अनेक व्यक्तियों को लिखने के लिये प्रोत्साहित भी किया। मैं भी साहित्य क्षेत्र जो कुछ कर सका हूँ और कर रहा हूँ इस का श्रेय श्री गोविन्दराम जी को ही है। अपने उत्तराधिकारी के रूप मे वे आर्य जगत् के लिये श्री विजय कुमार जी को छोड गये हैं जो उनके ही पद चिह्नों पर चलते हुए आर्य साहित्य के प्रकाशन में सलग्न हैं।

३३ वर्ष तक नरन्तर साहित्य सेवा करते हुए ऋषि दयानन्द का अनन्य भक्त, आर्य समाज का दीवाना तथा वैदिक साहित्य के लिये तन मन और धन को न्यौछावर करने वाला यह आर्यवीर २५ फरवरी १९६० को ऋषि बोधोत्सव के दिन ब्रह्म-मुहूर्त में परलोक वासी हो गये। परन्तु कौन कहता है कि गोविन्दराम जी मर गये। डाक्टर सूर्यदेव जी के शब्दों में—

दयानन्द के भक्त दृढ़, हा प्रिय गोविन्दराम।
आर्य जगत में रहेगा सदा आप का नाम॥

"विद्यार्थी"

[१]

दुष्ट स्वभाव त्याग

प्रत्युष्ट रक्षः प्रत्युष्टाऽ अरातयो निष्टप्त रक्षो निष्टप्ताऽ अरातयः । उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ १ । ७ ॥

पदार्थ—मुझको चाहिये कि पुरुषार्थ के साथ (रक्षः) दुष्टगुण और और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य को (प्रत्युष्ट) निश्चय करके निर्मूल करूं तथा (अरातयः) जो राति अर्थात् दान आदि धर्म से रहित दयाहीन दुष्ट शत्रु हैं उनको (प्रत्युष्टा) प्रत्यक्ष निर्मूल (रक्षः) वा दुष्टस्वभाव, दुष्टगुण, विद्या-विरोधी स्वार्थी मनुष्य और (निष्टप्त अरातयः) छल युक्त होके विद्या के ग्रहण वा दान से रहित दुष्ट प्राणियों को (निष्टप्ता) निरन्तर सन्तापयुक्त करूं। इस प्रकार करके (अन्तरिक्ष) सुख के सिद्ध करने वाले उत्तम स्थान और (उरु) अपार सुख को (अन्वेमि) प्राप्त होऊं।

भावार्थ—*ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों* को अपना दुष्ट स्वभाव छोड़ कर विद्या और धर्म के उपदेश से औरों को भी दुष्टता आदि अधर्म के व्यवहारों से अलग करना चाहिये तथा उनको बहु प्रकार का ज्ञान और सुख देकर सब मनुष्य आदि प्राणियों को विद्या धर्म पुरुषार्थ और नाना प्रकार के सुखों से युक्त करना चाहिये।

[२]

निर्भय होकर यज्ञ कर

मा भेर्मा संविक्थाऽ अतमेरुर्यज्ञोऽ तमेरुर्यजमानस्य ।
प्रजा भूयात् त्रिताया त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥
॥ १ । २३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! तुम (अतमेरु) श्रद्धालु होकर (यजमानस्य) यजमान के यज्ञानुष्ठान से (मा भेः) भय मत करो और उससे (मा संविक्था) मत चलायमान हो। इस प्रकार (यज्ञ) यज्ञ करते हुए तुम को उत्तम से उत्तम (अतमेरु) ग्लानि रहित श्रद्धावान् (प्रजा) सन्तान (भूयात्) प्राप्त हो और मैं (त्वा) भौतिक अग्नि को उक्त गुणयुक्त तथा (एकताय द्वितायत्रिताय) सत्य सुख के लिये वायु तथा वृष्टि जल की शुद्धि तथा अग्नि कर्म और हवि के होने के लिये (संयौमि) निश्चल करता हूँ।

भावार्थ—ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा और आशीर्वाद देता है कि किसी मनुष्य को यज्ञ, सत्याचार और विद्या के ग्रहण से डरना वा चलायमान कभी न होना चाहिये क्योंकि मनुष्यों को उक्त यज्ञ आदि अच्छे अच्छे कामों से ही उत्तम उत्तम सन्तान, शारीरिक, वाचिक और मानस विविध प्रकार के निश्चल सुख को प्राप्त हो सकते हैं।

[३]

गुरु शिष्य सम्बन्ध

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् ।
यथेह पुरुषोऽसत् ॥ २ । ३३ ॥

पदार्थः—हे (पितरः) विद्यादान से रक्षा करने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप (यथा) जैसे यह ब्रह्मचारी (इह) इस संसार वा हमारे कुल में अपने शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होके (पुरुषः) विद्या और पुरुषार्थ युक्त मनुष्य (असत्) हो वैसे (गर्भम्) गर्भ के समान (पुष्करस्रजम्) विद्या ग्रहण के लिये फूलों की माला धारण किये हुए (कुमारम्) ब्रह्मचारी को (आधत्त) अच्छी प्रकार स्वीकार कीजिये ।

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालंकार है । ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् पुरुष और स्त्रियों को चाहिये कि विद्यार्थी कुमार वा कुमारी को विद्या देने के लिये गर्भ के समान धारण करें । जैसे क्रम-क्रम से गर्भ के बीच देह बढ़ता है वैसे अध्यापक लोगों को चाहिये कि अच्छी अच्छी शिक्षा से ब्रह्मचारी कुमार वा कुमारी को श्रेष्ठ विद्या में वृद्धियुक्त तथा पालन करने योग्य हैं वे विद्या के योग से धर्मात्मा और पुरुषार्थयुक्त होकर सदा सुखी हों । यह अनुष्ठान सदैव करना चाहिये ।

[४]

माता पिता की सेवा

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् ।
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥ २ । ३४ ॥

पदार्थ—हे पुत्रादिको ! तुम (मे) मेरे (पितॄन्) पूर्वोक्त गुण वाले पितरों को (ऊर्जम्) अनेक प्रकार के उत्तम उत्तम रस (वहन्ती) सुख प्राप्त करने वाले स्वादिष्ट जल (अमृतम्) सब रोगों को दूर करने वाले औषधि मिष्टादि पदार्थ (पय) दूध (घृतम्) घी (कीलालम्) उत्तम उत्तम रीति से पकाया हुआ अन्न तथा (परिस्रुतम्) रस से चूते हुये पके फलों को देके (तर्पयत) तृप्त करो। इस प्रकार तुम उनके सेवन से विद्या को प्राप्त होकर (स्वधा) परधन का त्याग करके अपने धन के सेवन करने वाले (स्थ) होओ।

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों के पुत्र और नौकर आदि को आज्ञा देके कहना चाहिये कि तुम को हमारे पितर अर्थात् पिता माता आदि वा विद्या के देने वाले प्रीति से सेवा करने योग्य हैं। जैसे कि उन्होंने बाल्यावस्था वा विद्या दान के समय हम और तुम पाले हैं वैसे हम लोगों को भी वे सब काल में सत्कार करने योग्य हैं जिस से हम लोगों के बीच में विद्या का नाश और कृतघ्नता आदि दोष कभी न प्राप्त हो।

[६]

ईश्वरोपासक को दुःख कहां ?

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु।
ईशे रिपुरघशंस ॥ ३। ३२॥

पदार्थ—जो ईश्वर की उपासना करने वाले मनुष्य हैं (तेषाम्) उनके (अमा) गृह (अध्वसु) मार्ग और (वारणेषु) चोर, शत्रु, डाकू, व्याघ्र आदि के निवारण करने वाले संग्रामों में (चन) भी (अघशंस) पाप रूप कर्मों का कथन करने वाला (रिपु) शत्रु (नहि) नहीं स्थित होता और (न) न उनको क्लेश देने को समर्थ हो सकता। उस ईश्वर और उन धार्मिक विद्वानों के प्राप्त होने को मैं (ईशे) समर्थ होता हूं।

भावार्थ—जो धर्मात्मा वा सब के उपकार करने वाले मनुष्य हैं उन को भय कहीं नहीं होता और शत्रुओं से रहित मनुष्य का कोई शत्रु भी नहीं होता।

[७]

तुझे प्राप्त करें

आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्य वसुवित्तमम् ।
अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ॥३।३८॥

पदार्थः—हे (सम्राट्) प्रकाशस्वरूप ! (अग्ने) जगदीश्वर ! आप (अस्मभ्यम्) उपासना करने वाले हम लोगों के लिए (द्युम्नम्) प्रकाशस्वरूप उत्तम यश वा (सहः) उत्तम बल को (अभ्यायच्छस्व) सब ओर से विस्तार युक्त करते हो इसलिये हम लोग (वसुवित्तमम्) पृथिवी आदि लोकों को जानने वा (विश्ववेदसम्) सब सुखों के जानने वाले आप को (अभ्यागन्म) सब प्रकार प्राप्त होवें ।

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है । मनुष्यों को परमेश्वर वा भौतिक अग्नि के गुणों को जानने वा उसके अनुसार अनुष्ठान करने से कीर्ति, यश और बल का विस्तार करना चाहिये ।

[८]

गृहस्थियों के कर्तव्य

प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादस ।
करम्भेण सजोषस ॥ ३ । ४४ ॥

पदार्थ—हम लोग (करम्भेण) अविद्यारूपी दुःख होने से अलग होवें (सजोषस) बारबार प्रीति से सेवन करने (रिशादस) दोष वा शत्रुओं को नष्ट करने (प्रघासिन) पके हुए पदार्थों के भोजन करने वाले अतिथि लोग और (मरुत) यज्ञ करने वाले विद्वान् लोगों को (हवामहे) सत्कारपूर्वक नित्यप्रति बुलाते रहे।

भावार्थ—गृहस्थों को उचित है कि वैद्यक, शूर-वीरता और यज्ञ को सिद्ध करने वाले मनुष्यों को बुला कर उनकी यथावत् सत्कार पूर्वक सेवा करके उनसे उत्तम उत्तम विद्या वा शिक्षाओं को निरन्तर ग्रहण करें।

[६]

पुरुषार्थी को ही सुख

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सहवाचा मयोभुवा।
देवेभ्यः कर्म कृत्वास्त प्रेत सचाभुवः ॥३।४७॥

पदार्थ—जो मनुष्य लोग (मयोभुवा) सत्यप्रिय मगल करने वाली (वाचा) वेदवाणी वा अपनी वाणी के (सह) साथ (सचाभुवः) परस्पर सगी होकर (कर्मकृत) कर्मों को करते हुए (कर्म) अपने अभीष्ट कर्म को (अक्रन्) करते है, वे (देवेभ्य) विद्वान् वा उत्तम उत्तम गुण, सुखों के लिये (कर्म) करने योग्य कर्म का (कृत्वा) अनुष्ठान करके (अस्तम्) पूर्ण सुखयुक्त घर को (प्रेत) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—मनुष्यो को योग्य है कि सर्वथा आलस्य को छोड कर पुरुषार्थ ही मे निरन्तर रहके, मूर्खपन को छोड कर वेद-विद्या से शुद्ध की हुई वाणी के साथ सदा वर्तें और परस्पर प्रीति करके एक दूसरे का सहाय करे। जो इस प्रकार के मनुष्य है वे ही अच्छे अच्छे सुख युक्त मोक्ष वा इस लोक के सुखो को प्राप्त होकर आनन्दित होते है। अन्य अर्थात् आलसी पुरुष आनन्द को कभी नही प्राप्त होते।

[१०]

दुराचार से सदाचार की ओर

परिमाग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज ।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृतौं २५ अनु ॥ ४।२८॥

पदार्थ —हे (अग्ने) जगदीश्वर ! आप कृपा कर के जिस कर्म मे मैं (स्वायुषा) उत्तमतापूर्वक प्राण धारण करने वाले (आयुषा) जीवन से (अमृतान्) जीवन मुक्त और मोक्ष को प्राप्त हुए वा विद्वान् वा मोक्ष रूपी आनन्दो को (उदस्थाम्) अच्छे प्रकार से प्राप्त होऊ उससे (मा) मुझको सयुक्त करवे (दुश्चरितात्) दुष्टाचरण से (बाधस्व) पृथक् करके (मा) मुझ को (सुचरिते) उत्तम उत्तम धर्माचरण युक्त व्यवहार मे (अनु भज) अच्छे प्रकार स्थापन कीजिये ।

भावार्थ —मनुष्यो को योग्य है कि अधर्म को छोड़ने और धर्म को ग्रहण करने के लिये सत्य भाव से प्रार्थना करें क्योकि प्रार्थना किया हुआ परमात्मा शीघ्र अधर्मो को छुडा कर धर्म ही मे प्रवृत्त कर देना है परन्तु सब मनुष्यो को यह करना आवश्यक है कि जब तक जीवन है तब तक धर्माचरण ही मे रह कर ससार वा मोक्ष रूपी सुखों को सब प्रकार से सेवन करें ।

[११]

पूर्वजों के मार्ग पर चल

प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।
येन विश्वाः परिद्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥४।२६॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप के अनुग्रह से युक्त पुरुषार्थी होकर हम लोग (येन) जिस मार्ग से विद्वान् मनुष्य (विश्वा) सब (द्विषः) शत्रु-सेना वा दुःख देने वाली भोग-क्रियाओं को (परिवृणक्ति) सब प्रकार से दूर करता और (वसु) सुख करने वाले धन को (विन्दते) प्राप्त होता है, उस (अनेहसम्) हिंसा रहित (स्वस्तिगाम्) सुखपूर्वक जाने योग्य (पन्थाम्) मार्ग को (प्रत्यपद्महि) प्रत्यक्ष प्राप्त होवें ।

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि द्वेषादि त्याग विद्यादि धन की प्राप्ति और धर्ममार्ग के प्रकाश के लिये ईश्वर की प्रार्थना धर्म और धार्मिक विद्वानों की सेवा निरन्तर करें ।

ईश्वर क्या करता है ?

वनेषु व्यन्तरिक्ष ततान वाजमर्वत्सु पय ऽ उस्रियासु।
हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं
दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥४। ३१॥

पदार्थ—जो (वरुण) अत्युत्तम परमेश्वर, सूर्य वा प्राणवायु हैं वे (वनेषु) किरण वा वनो मे (अन्तरिक्षम्) आकाश को (विततान) विस्तार युक्त किया वा करता (अर्वत्सु) अत्युत्तम वेगादि गुण युक्त विद्युत आदि पदार्थ और घोडे आदि पशुओ मे (वाजम्) वेग (उस्रियासु) गौओ मे (पय) दूध (हृत्सु) हृदयो मे (क्रतुम्) प्रज्ञा वा कर्म (विक्षु) प्रजा मे (अग्निम्) अग्नि (दिवि) प्रकाश मे (सूर्य) आदित्य (अद्रौ) पर्वत या मेघ मे (सोमम्) सोम वल्ली आदि औषधि और श्रेष्ठ रस को (अदधात्) धारण किया करते हैं उसी ईश्वर की उपासना और उन्ही दोनो का उपयोग करें।

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालकार है। जैसे परमेश्वर अपनी विद्या का प्रकाश और जगत् की रचना से सब पदार्थों मे उन के स्वभाव युक्त गुणो को स्थापन और विज्ञान आदि गुणो को नियत करके पवन सूर्य आदि को विस्तार युक्त करना है वैसे सूर्य और वायु भी सब के लिये सुखो का विस्तार करते हैं।

[१३]

यज्ञ का विस्तार

ध्रुवोऽसि पृथिवीं दृꣳह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षं दृꣳहाच्युतक्षिदसि दिवं दृꣳहाग्नेः पुरीषमसि ॥ ५ । १३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जो यज्ञ (ध्रुव) निश्चल (पृथिवीम्) भूमि को बढाता (असि) है उस को तुम (दृंह) बढाओ । जो (ध्रुवक्षित्) निश्चल सुख और शास्त्रों का निवास कराने वाला (असि) है या (अन्तरिक्षम्) आकाश में रहने वाले पदार्थों को पुष्ट करता है उसको तुम (दृंह) बढाओ । जो (अच्युतक्षित्) नाश रहित पदार्थों को निवास कराने वाला (असि) है या (दिवम्) विद्यादि प्रकाश को प्रकाशित करता है उसको तुम (दृंह) बढाओ । जो (अग्ने) बिजली आदि अग्नि वा (पुरीषम्) पशुओं की पूर्ति करने वाला यज्ञ (असि) है, उस का अनुष्ठान तुम किया करो ।

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विद्या क्रिया से सिद्ध वा त्रिलोकी के पदार्थों को पुष्ट करने वाले विद्यामय यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखी रहें और सब को रक्खें ।

[१४]

संसार धारक

इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसि ।
ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ॥ ५ । ३० ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष ! जैसे (वैश्वदेवम्) समस्त पदार्थों का निवासस्थान अन्तरिक्ष है वैसे आप (ऐन्द्रम्) सब के आधार हैं । इसी से हम लोगो को (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य का (स्यू) सयोग करने वाले (असि) हैं और (इन्द्रस्य) सूर्यादि लोक वा राज्य को (ध्रुव) निश्चल करने वाले हैं ।

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष और उपमालङ्कार है । जैसे सकलैश्वर्य का देने वाला जगदीश्वर है वैसे सभाध्यक्षादि मनुष्यो को भी होने चाहिए ।

[१५]

मलों को दूर कर, दर्शन होंगे

तद्विष्णोः परमं पद॰ सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ६ । ५ ॥

पदार्थः—हे सभ्य जनो ! जिस पूर्वोक्त कर्म से (सूरयः) स्तुति करने वाले वेदवेत्ता जन (विष्णोः) ससार की उत्पत्ति, पालन और सहार करने वाले परमेश्वर के जिस (परमम्) अत्यन्त उत्तम (पदम्) प्राप्त होने योग्य पद को (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (आततम्) व्याप्त (चक्षुः) नेत्र के (इव) समान (सदा) सब समय मे (पश्यन्ति) देखते है (तत्) उस को तुम लोग भी निरन्तर देखो ।

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (पश्यत्) इस पद का अनुवर्तन किया जाता है और पूर्णोपमालङ्कार है । निर्धूत अर्थात् छट गये है पाप जिन के, वे विद्वान् लोग अपनी विद्या के प्रकाश से जैसे ईश्वर के गुणों को देख के सत्यधर्माचारयुक्त होते है वैसे हम लोगों को भी होना चाहिए ।

[१६]

सांप और भेड़िया न बन

माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्त आताऽनर्वा प्रेहि ।
घृतस्य कुल्याऽउपऽऋतस्य पथ्या अनु ॥ ६।१२ ॥

पदार्थ—हे (आतान) अच्छे प्रकार सुख के विस्तार करने वाले विद्वन्! तू (मा) मत (अहिः) सर्प के समान कुटिल मार्गगामी और (मा) मत (पृदाकु) मूर्खजन के समान अभिमानी वा व्याघ्र के समान हिंसा करने वाला (भू) हो। (ते नम) सब जगह तेरे सुख के लिए अन्नादि पदार्थ पहले ही प्रवृत्त हो रहे हैं और (अनर्वा) अश्व आदि सवारी के बिना निराश्रय पुरुष जैसे (घृतस्य) जल की (कुल्या) बड़ी धाराओं को प्राप्त हो वैसे (ऋतस्य) सत्य के (पथ्या) मार्ग को प्राप्त हो।

भावार्थ—किसी मनुष्य को कुटिलगामी सर्पादि दुष्ट जीवों के समान धर्ममार्ग में कुटिल न होना चाहिए किन्तु सर्वदा सरल भाव से ही रहना चाहिये।

[१७]

पति पत्नी व्यवहार

मा भेर्मा संविक्था ऽऊर्जं धत्स्वधिषणे
विड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम् ।
पाप्मा हतो न सोमः ॥ ६ । ३५ ॥

पदार्थः—हे स्त्री ! तू (विड्वी) शरीरात्मबल-युक्त होती हुई पति से (मा भे.) मत डर, (मा सविक्था) मत कप और (ऊर्जम्) देह और आत्मा के बल और पराक्रम को (धत्स्व) धारण कर। हे पुरुष ! तू भी वैसे ही अपनी स्त्री से बर्ते। तुम दोनो स्त्री पुरुष (धिपरो) सूर्य और भूमि के समान परोपकार और पराक्रम को धारण करो जिससे (वीडयेथाम्) दृढ़ बल वाले हो ऐसा बर्ताव वर्तते हुए तुम दोनो का (पाप्मा) अपराध (हत) नष्ट हो और (सोमः) चन्द्र के तुल्य आनन्द, शान्त्यादि गुण बढा कर एक दूसरे का आनन्द बढाते रहो।

भावार्थः—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है। स्त्री पुरुष ऐसे व्यवहार में वर्तें कि जिससे उन का परस्पर भय और उद्वेग नष्ट होकर आत्मा की दृढता, उत्साह और गृहस्थाश्रम की सिद्धि से ऐश्वर्य बढे और ये दोष तथा दु ख को छोड चन्द्रमा के तुल्य अह्लादित हों।

[१८]

यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे

अन्तरस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम्।
सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्य्यामे मघवन् मादयस्व॥
७।५॥

पदार्थ—हे (मघवन्) योगी ! मैं परमेश्वर (ते) तेरे (अन्त) हृदयाकाश में (द्यावापृथिवी) सूर्य भूमि के समान विज्ञान आदि पदार्थों को (दधामि) स्थापित करता हूं तथा (उरु) विस्तृत (अन्तरिक्षम्) अवकाश को (अन्त) शरीर के भीतर (दधामि) धरता हूं। (सजू) मित्र के समान तू (देवेभ्य) विद्वानों से विद्या को प्राप्त होवे (अवरै परै च) थोड़े वा बहुत योग व्यवहारों मे (अन्तर्यामी) भीतरले नियमों मे वर्तमान होकर अन्य सब को (मादयस्व) प्रसन्न किया कर।

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है। ईश्वर का यह उपदेश है कि ब्रह्माण्ड मे जिस प्रकार के जितने पदार्थ हैं उसी प्रकार के उतने ही मेरे ज्ञान मे वर्तमान हैं। योग विद्या को नही जानने वाला उन को नही देख सकता और मेरी उपासना के बिना कोई योगी नही हो सकता है।

[१६]

पत्नी के गुण

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति ।
एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥ ८ । ४३ ॥

पदार्थ—हे (अघ्न्ये) ताडना न देने योग्य ! (अदिते) आत्मा से विनाश को न प्राप्त होने वाली (ज्योते) श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान (इडे) प्रशसनीय गुणयुक्त (हव्ये) स्वीकार करने योग्य (काम्ये) मनोहर स्वरूप (रन्ते) रमण करने योग्य (चन्द्रे) अत्यन्त आनन्द देने वाली (विश्रुति)) अनेक अच्छी बातें और वेद जानने वाली (महि) अत्यन्त प्रशसा करने योग्य (सरस्वति) प्रशंसित विज्ञान वाली पत्नी उक्त गुण प्रकाश करने वाले (ते) तेरे (एता) ये (नामानि) नाम है। तू (देवेभ्य) उत्तम गुणों के लिये (मा) मुझ को (सुकृतम्) उत्तम उपदेश (ब्रूतात्) किया करें।

भावार्थ—जो विद्वानो से शिक्षा पाई हुई स्त्री हो वह अपने अपने पति और अन्य स्त्रियो को यथा योग्य उत्तम कर्म सिखलावे, जिस से किसी तरह वे अधर्म की ओर न डिगे। वे दोनो स्त्री पुरुष विद्या की वृद्धि और बालकों तथा कन्याओं को शिक्षा किया करें।

[२२]

राजा तथा माता सत्योपदेश करें

प्र नो यच्छत्वर्य्यमा प्र पूषा प्र बृहस्पति ।
प्र वाग्देवी ददातु न स्वाहा ॥ ६ । २६ ॥

पदार्थ —जैसे (अर्य्यमा) न्यायाधीश (न) हमारे लिये उत्तम शिक्षा (प्रयच्छतु) देवे, जैसे (पूषा) पोषण करने वाला शरीर और आत्मा की पुष्टि की शिक्षा (प्र) अच्छे प्रकार देवे जैसे (बृहस्पति) विद्वान् (प्र स्वाहा) अत्युत्तम विद्या देवे वैसे (वाक्) उत्तम विद्या सुशिक्षा सहित वाणी युक्त (देवी) प्रकाशमान पढाने वाली माता हमारे लिये सत्य विद्या युक्त वाणी का (प्रददातु) उपदेश सदा किया करे ।

भावार्थ —यहा जगदीश्वर उपदेश करता है कि राजा आदि सब पुरुष और माता आदि स्त्री सदा प्रजा और पुत्रादिको को सत्य सत्य उपदेश कर विद्या और अच्छी शिक्षा को निरन्तर ग्रहण करावें जिस से प्रजा और पुत्र पुत्री आदि सदा आनन्द मे रहें ।

[२३]

रानी के कर्तव्य

स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि ।
स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद ॥
१० । २६ ॥

पदार्थः—हे रानी ! जिस लिये आप (स्योना) सुखरूप (असि) है, (सुषदा) सुन्दर व्यवहार करने वाली (असि) हैं। (क्षत्रस्य) राज्य के न्याय के (योनि.) करने वाली (असि) हैं इस लिये आप (स्योनाम्) सुख कारक अच्छी शिक्षा मे (आसीद) तत्पर हूजिये। (सुषदाम्) अच्छे सुख देने हारी विद्या को (आसीद) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये तथा कराइये और (क्षत्रस्य) क्षत्रियकुल की (योनिं) राजनीति को (आसीद) सब स्त्रियों को जनाइये।

भावार्थः—राजाओं की स्त्रियों को चाहिये कि सब स्त्रियो के लिये न्याय और अच्छी शिक्षा देवे और स्त्रियो का न्याय आदि पुरुष न करें क्योकि पुरुष के सामने स्त्री लज्जित और भय युक्त होकर यथावत् बोल वा पढ़ ही नही सकती।

[२४]

योगाभ्यास का फल

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे।
स्वर्ग्याय शक्त्या ॥ ११। २॥

पदार्थ—हे योग और तत्त्वविद्या के जानने की इच्छा करने हारे मनुष्यो! जैसे (वयम्) हम योगी लोग (युक्तेन) योगाभ्यास किये (मनसा) विज्ञान और (शक्त्या) सामर्थ्य से (देवस्य) सब को चिताने तथा (सवितुः) समग्र संसार को उत्पन्न करने हारे ईश्वर के (सवे) जगत् रूप इस ऐश्वर्य मे (स्वर्ग्याय) सुख प्राप्ति के लिए प्रकाश की अधिकाई से धारण करें वैसे तुम लोग भी प्रकाश को धारण करो।

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचक लुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य परमेश्वर की इस सृष्टि मे समाहित हुए योगाभ्यास और तत्त्वविद्या को यथावत सेवन करें उन मे सुन्दर आत्मज्ञान के प्रकाश से युक्त हुए योग और पदार्थ विद्या का अभ्यास करें तो अवश्य सिद्धियों को प्राप्त हो जावें।

[२५]

पुरुषार्थ करो

उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद्
द्रविणोदा वाजिन् ।
वयᳪ स्याम सुमतौ पृथिव्याऽअग्नि खनन्तऽ
उपस्थे ऽअस्याः ॥ ११ । २१ ॥

पदार्थ—हे (वाजिन्) ऐश्वर्य को प्राप्त हुए विद्वन् ! जैसे (द्रविणोदा) धन दाता (अस्या.) इस (पृथिव्याः) भूमि के (अस्मात्) इस (आस्थानात्) निवास के स्थान से (उपस्थे) समीप मे (अग्निम्) अग्नि विद्या का (खनन्त.) खोज करते हुए (वयम्) हम लोग (महते) बड़े (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिये (सुमतौ) अच्छी बुद्धि मे प्रवृत्त (स्याम) हो वैसे आप (उत्क्राम) उन्नति को प्राप्त हूजिये।

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि इस संसार में ऐश्वर्य पाने के लिये निरन्तर उद्यत रहें और आपस में हिल मिल के पृथिवी आदि पदार्थों से रत्नों को प्राप्त होवें।

[२६]

विद्यार्थियों के कर्तव्य

स्थिरो भव वीड्वङ्ग ऽ आशुर्भव वाज्यर्वन् ।
पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्ने पुरीषवाहण ॥ ११।४४ ॥

पदार्थ—हे (अर्वन्) विज्ञानयुक्त पुत्र ! तू विद्या ग्रहण के लिये (स्थिर) दृढ (भव) हो। (वाजी) नीति को प्राप्त होवे (वीड्वङ्ग) दृढ अति बलवान् अवयवों से युक्त (आशु) शीघ्र कर्म करने वाला (भव) हो। तू (अग्ने) अग्नि सम्बन्धी (सुषद) सुन्दर व्यवहारों में स्थित और (पुरीष वाहण) पालन आदि शुभ कर्मों को प्राप्त करने वाला (पृथु) सुख का विस्तार करने हारा (भव) हो।

भावार्थ—हे अच्छे सन्तानो ! तुम को चाहिये कि ब्रह्मचर्य के सेवन से शरीर का बल और विद्या तथा अच्छी शिक्षा से आत्मा का बल पूर्ण दृढ कर स्थिरता से रक्षा करो और आग्नेय आदि अस्त्र विद्या से शत्रुओं का विनाश करो। इस प्रकार माता पिता अपने सन्तानों को शिक्षा करें।

[२७]

पति पत्नी कर्तव्य

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ॥ ११।५१॥

पदार्थः—हे स्त्रियो ! (वः) तुम्हारा और (नः) हमारा (इह) इस गृहाश्रम मे जो (शिवतम.) अत्यन्त सुखकारी (रसः) कर्तव्य, आनन्द है (तस्य) उस का (माता उशतीरिव) जैसे कामयमान माता अपने पुत्रों को सेवन करती है वैसे (भाजयत) सेवन करो ।

भावार्थः—स्त्रियों को चाहिये कि जैसे माता पिता अपने पुत्रो का सेवन करते हैं वैसे अपने अपने पतियों की प्रीति पूर्वक सेवा करे । ऐसे ही अपनी अपनी स्त्रियो की पति भी सेवा करें। जैसे प्यासे प्राणियो को जल तृप्त करता है वैसे अच्छे स्वभाव के आनन्द से स्त्री पुरुष भी परस्पर प्रसन्न रहे ।

[२८]

दुष्ट दलन

यो ऽ अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः ।
निन्दाद्यो ऽ अस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं मस्मसा कुरु ॥
११ । ८०॥

पदार्थ—हे सभा और सेना के स्वामिन् ! आप (य) जो (जन) मनुष्य (अस्मभ्यम्) हम धर्मात्माओं के लिये (अरातीयात्) शत्रुता करे, (य) जो (न) हमारे साथ (द्वेषते) दुष्टता करे (च) और हमारी (निन्दात्) निन्दा करे (य) जो (अस्मान्) हम को (धिप्सात्) दम्भ दिखलावे और हमारे साथ छल करे (तम्) उस (सर्वम्) सब को (भस्मसा) जला कर सम्पूर्ण भस्म (कुरु) कीजिये।

भावार्थ—अध्यापक उपदेशक और राजपुरुषों को चाहिये कि पढाने, शिक्षा, उपदेश और दण्ड से निरन्तर विरोध का विनाश करें।

[२६]

श्रेष्ठ अन्न का सेवन

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्र प्र दातार तारिषऽऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥
॥ ११ । ८३ ॥

पदार्थ—हे (अन्नपते) औषधि अन्नों के पालन करने हारे यजमान वा पुरोहित ! आप (न) हमारे लिये (अनमीवस्य) रोगों के नाश से सुख को बढ़ाने (शुष्मिणः) बहुत बलकारी (अन्नस्य) अन्न को (प्र प्र देहि) अति प्रकर्ष के साथ दीजिये। और इस अन्न के (दातारम्) देने हारे को (तारिष) तृप्त कर तथा (न) हमारे (द्विपदे) दो पग वाले मनुष्य आदि तथा (चतुष्पदे) चार पग वाले गौ आदि पशुओं के लिए (ऊर्जम्) पराक्रम को (धेहि) धारण कर।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सदैव बलकारी आरोग्य अन्न आप सेवें और दूसरों को देवें। मनुष्य तथा पशुओं के सुख और बल बढ़ावें जिससे ईश्वर की सृष्टि क्रम अनुकूल आचरण से सब के सुखों की सदा उन्नति होवे।

[३०]

दाम्पत्य प्रेम

समितःस्र कल्पेथाᳬं सप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ ।
इषमूर्जमभि सवसानौ ॥ १२ । ५७ ॥

पदार्थ —हे विवाहित स्त्री पुरुषो ! तुम (सप्रियौ) आपस मे सम्यग् प्रीति वाले (रोचिष्णू) विषयासक्ति से पृथक् प्रकाशमान् (सुमनस्यमानौ) मित्र विद्वान् पुरुषों के समान वर्तमान (सवसानौ) सुन्दर वस्त्र और आभूषणो से युक्त हुए (इषम्) इच्छा को (समितम्) इकट्ठे प्राप्त होओ और (ऊर्जम्) पराक्रम को (अभि) सम्मुख (सकल्पेथाम्) एक अभिप्राय मे समर्पित करो ।

भावार्थ —जो स्त्री पुरुष सर्वथा विरोध को छोड के एक दूसरे की प्रीति मे तत्पर, विद्या के विचार से युक्त तथा अच्छे अच्छे वस्त्र और आभूषण धारण करने वाले होवे प्रयत्न करें तो घर मे कल्याण और आरोग्य बढे । और जो परस्पर विरोधी हो तो दुःख सागर मे अवश्य डूबें ।

[३१]

कृषि विद्या

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥ १२ । ६७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (धीरा) ध्यानशील (कवयः) बुद्धिमान् लोग (सीराः) हलों और (युगा) जुआ आदि को (युञ्जन्ति) युक्त करते और (सुम्नया) सुख के साथ (देवेषु) विद्वानो मे (पृथक्) अलग (वितन्वते) विस्तार युक्त करते वैसे सब लोग इस खेती कर्म का सेवन करें।

भावार्थः—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानो की शिक्षा से कृषि कर्म की उन्नति करें। जैसे योगी नाडियों में परमेश्वर को समाधियोग से प्राप्त होते हैं वैसे ही कृषि कर्म द्वारा सुखो को प्राप्त होवें।

[३४]
पति पत्नी व्यवहार

इषे राये रमस्व सहसे द्युम्नऽऊर्जेऽअपत्याय ।
सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥
॥ १३ । ३५ ॥

पदार्थ—हे पुरुष ! जो तू (सम्राट्) विद्यादि शुभ गुणो से स्वय प्रकाशमान (असि) है । हे स्त्रि ! जो तू (स्वराट्) अपने आप विज्ञान सत्याचार से शोभायमान (असि) है सो तुम दोनो (इषे) विज्ञान (राये) धन (सहसे) बल (द्युम्ने) यश और अन्न (ऊर्जे) पराक्रम और (अपत्याय) सन्तानो की प्राप्ति के लिये (रमस्व) यत्न करो तथा (उत्सौ) कूपोदक के समान कोमलता को प्राप्त होकर (सारस्वतौ) वेदवाणी के उपदेश मे कुशल होके तुम दोनो स्त्री पुरुष इन स्वशरीर और अन्नादि पदार्थों की (प्रावताम्) रक्षा आदि करो यह (त्वा) तुम को उपदेश देता हूँ ।

भावार्थ—विवाह करके स्त्री पुरुष दोनो आपस मे प्रीति के साथ विद्वान् होकर पुरुषार्थ से धनवान्, श्रेष्ठ गुणो से युक्त होके एक दूसरे की रक्षा करते हुए धर्मानुकूलता से वर्तें सन्तानो को उत्पन्न कर इस ससार मे नित्य क्रीडा करें ।

[३५]

नारी गौरव

मूर्द्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी ।
आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥
॥ १४ । २१ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो तू सूर्य के तुल्य (मूर्द्धा) उत्तम (असि) है (राट्) प्रकाशमान निश्चल के समान (ध्रुवा) निश्चल शुद्ध (असि) है, (धरुणा) पुष्टि करने हारी (धरणी) आधाररूप पृथिवी के तुल्य (धर्त्री) धारण करने हारी (असि) है उस (त्वा) तुझे (आयुषे) जीवन के लिये उस (त्वा) तुझे (वर्चसे) अन्न के लिए उस (त्वा) तुझे (कृष्यै) खेती होने के लिये और उस (त्वा), तुझको (क्षेमाय) रक्षा होने के लिये सब ओर से ग्रहण करता हूँ ।

भावार्थः—जैसे स्थित उत्तमाग शिर से सब का जीवन, राज्य से लक्ष्मी, खेती से अन्नादि पदार्थ और निवास से रक्षा होती है सो यह सब का आधारभूत माता के तुल्य मान्य करने हारी पृथिवी है वैसे ही विदुषी स्त्री को होना चाहिये ।

[३६]

नारी धर्म

लोक पृण छिद्र पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम्।
इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥
॥ १५ । ५६ ॥

हे स्त्रि ! (त्वम्) तू इस (लोकम्) लोक तथा परलोक को (पृण) सुख युक्त कर (छिद्रम्) अपनी न्यूनता को पूरा कर और (ध्रुवा) निश्चलता से (सीद) घर मे बैठ। (अथो) इसके अनन्तर (इन्द्राग्नी) उत्तम धनी, ज्ञानी तथा (बृहस्पति) अध्यापक (अस्मिन्) इस (योनौ) गृहाश्रम मे (त्वा) तुझ को (असीषदन्) स्थापित करे।

भावार्थ—अच्छी चतुर स्त्री को चाहिये कि घर के कार्यों मे साधनो को पूरे करके सब कार्यों को सिद्ध करें। जैसे विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुषो को गृहाश्रम के कर्तव्य कर्मों मे प्रीति हो वैसा उपदेश करे।

[३७]

राजधर्म

नमस्ते रुद्र मन्यवऽ उतो तऽइषवे नम ।
बाहुभ्यामुत ते नम ॥ १६ । १ ॥

पदार्थ —हे (रुद्र) दुष्ट शत्रुओ को रुलाने हारे राजन्! (ते) तेरे (मन्यवे) क्रोधयुक्त वीर पुरुष के लिये (नम) वज्र प्राप्त हो। (उतो) और (इषवे) शत्रुओ को मारने हारे (ते) तेरे लिये (नम) अन्न प्राप्त हो (उत) और (ते) तेरे (बाहुभ्याम्) भुजाओ से (नम) वज्र शत्रुओ को प्राप्त हो।

भावार्थ —जो राज्य किया चाहे वे हाथ पाव का बल, युद्ध की शिक्षा तथा शस्त्र और अस्त्रो का सग्रह करे।

[३८]

नमस्ते

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥ १६ । ३२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (ज्येष्ठाय) अत्यन्त वृद्धों (च) और (कनिष्ठाय) अति बालकों का (नमः) सत्कार और अन्न (च) तथा (पूर्वजाय) ज्येष्ठ भ्राता वा ब्राह्मण (च) और (अपरजाय) छोटे भाई वा नीच का (च) भी (नमः) सत्कार वा अन्न (मध्यमाय) बन्धु क्षत्रिय वा वैश्य (च) और (अपगल्भाय) ढीठपन छोड़े हुए सरल स्वभाव वाले (च) इन सब का (नमः) सत्कार आदि (च) और (जघन्याय) नीच कर्म कर्त्ता शूद्र वा म्लेच्छ (च) तथा (बुध्न्याय) अन्तरिक्ष में हुए मेघ के तुल्य वर्तमान दाता पुरुष का (नमः) अन्नादि से सत्कार करो।

भावार्थः—परस्पर मिलते समय सत्कार करना हो तब 'नमस्ते' इस वाक्य का उच्चारण करके छोटे बड़ों, बड़े छोटों, नीच उत्तमों, उत्तम नीचों और क्षत्रियादि ब्राह्मणों वा ब्राह्मणादि क्षत्रियों का निरन्तर सत्कार करें। सब लोग इसी वेदोक्त प्रमाण से सर्वत्र शिष्टाचार में इसी वाक्य का प्रयोग करके परस्पर एक दूसरे का सत्कार करने से प्रसन्न होवें।

[३६]

वैद्य के कर्तव्य

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥१६।४६॥

पदार्थः—हे (रुद्र) राजा के वैद्य ! तू (या) जो (ते) तेरी (शिवा) कल्याण करने वाली (तनू) देह वा विस्तार युक्त नीति (शिवा) देखने में प्रिय (भेषजी) औषधियों के तुल्य रोगनाशक और (रुतस्य) रोगी को (शिवा) सुखदायी (भेषजी) पीडा हरने वाली है (तया) उस से (जीवसे) जीने के लिये (विश्वाहा) सब दिन (नः) हम को (मृड) सुखी कर।

भावार्थः—राजा के वैद्य आदि विद्वानों को चाहिये कि धर्म की नीति, औषधि के दान, हस्त-क्रिया की कुशलता और शस्त्रों से छेदन भेदन कर के रोगों से बचा के सब सेना और प्रजाओं को प्रसन्न करें।

[४०]

सेनापति

मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव।
परमे वृक्षऽआयुध निधाय कृत्ति वसानऽ
आचर पिनाकम्बिभ्रदा गहि ॥१६।५१॥

पदार्थ—हे (मीढुष्टम) अत्यन्त पराक्रमयुक्त (शिवतम) अति कल्याणकारी सभा वा सेना के पति! आप (न.) हमारे लिये (सुमना) प्रसन्न चित्त से (शिव.) सुखकारी (भव) हूजिये। (आयुधम्) खड्ग, भुशुण्डी और शतघ्नी आदि शस्त्रो का (निधाय) ग्रहण कर (कृत्तिम्) मृग चर्मादि की अगरखी को (वसान) शरीर मे पहिने (पिनाकम्) आत्मा के रक्षक धनुष वा बखतर आदि को (बिभ्रत्) धारण किये हुए हम लोगो की रक्षा के लिये (आ गहि) आइये। (परमे) प्रबल (वृक्षे) काटने योग्य शत्रु की सेना मे (आचर) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये।

भावार्थः—सभा और सेना के अध्यक्षादि लोग अपनी प्रजाओ मे मगलाचारी और दुष्टो मे अग्नि के तुल्य तेजस्वी दाहक हो जिस से सब लोग धर्म मार्ग को छोड के अधर्म का आचरण कभी न करे।

[४१]

तीर्थ

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः ।
तेषा ँ सहस्र योजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥१६।६१॥

पदार्थः—हम लोग (ये) जो (सृकाहस्ता) हाथों में वज्रधारण किये हुए (निषङ्गिणः) प्रशसित बाण और कोप से युक्त जनों के समान (तीर्थानि) दु.खों से पार करने हारे वेद, आचार्य, सत्यभाषण और ब्रह्मचर्यादि अच्छे नियम अथवा जिन से समुद्रादिकों को पार करते है उन नौका आदि तीर्थों का (प्रचरन्ति) प्रचार करते है (तेषाम्) उनके (सहस्रयोजने) हजार योजन के देश मे (धन्वानि) शस्त्रों को (अव, तन्मसि) विस्तृत करते हैं ।

भावार्थः—मनुष्यो के दो प्रकार के तीर्थ हैं उन में पहले तो वे जो ब्रह्मचर्य, गुरु की सेवा, वेदादि शास्त्रों का पढना पढाना, सत्सग, ईश्वर की उपासना और सत्य भाषण आदि दु.ख सागर से मनुष्यों को पार करते हैं और दूसरे वे जिनसे समुद्रादि जलाशयों के इस पार उस पार जाने आने में समर्थ हों ।

[४२]

संग्राम विजेता नारियां

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः ॥
॥ १७ । ४५ ॥

पदार्थ —हे (शरव्ये) बाणविद्या मे कुशल (ब्रह्म-संशिते) वेदवेत्ता विद्वान् से प्रशंसा और शिक्षा पाये हुए सेनापति की स्त्रि ! तू (अवसृष्टा) प्रेरणा को प्राप्त हुई (परा, पत) दूर जा। (अमित्रान्) शत्रुओं को (गच्छ) प्राप्त हो और उनके मारने से विजय को (प्र, पद्यस्व) प्राप्त हो। (अमीषाम्) उन दूर देश मे ठहरे हुए शत्रुओं में से मारने के बिना (कं, चन) किसी को (मा, उच्छिषः) मत छोड़।

भावार्थ—सभापति आदि को चाहिये कि जैसे युद्धविद्या से पुरुषों को शिक्षा करें वैसे स्त्रियों को भी शिक्षा करें। जैसे वीर पुरुष युद्ध करें वैसे स्त्री भी करें। जो युद्ध मे मारे जावें उन से शेष अर्थात् बचे हुए कातरों को निरन्तर कारागार मे स्थापन करें।

[४३]

वीर योद्धा

प्रेता जयता नरऽइन्द्रो वः शर्म्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥१७।४६॥

पदार्थः—हे (नरः) अनेक प्रकार के व्यवहारों को प्राप्त करने वाले मनुष्यो ! तुम (यथा) जैसे शत्रुजनों को (इत) प्राप्त होओ और उन्हें (जयत) जीतो तथा (इन्द्रः) शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला सेनापति (व) तुम लोगों के लिए (शर्म्म) घर (प्र, यच्छतु) देवे। (वः) तुम्हारी (बाहवः) भुजा (उग्रा) दृढ़ (सन्तु) हों और (अनाधृष्याः) शत्रुओं से न धमकाने योग्य (असथ) होओ वैसा प्रयत्न करो।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो शत्रुओं को जीतने वाले वीर हों उनका सेनापति धन, अन्न, गृह और वस्त्रादिकों से निरन्तर सत्कार करे तथा सेनास्थ जन जैसे बली हों वैसा व्यवहार अर्थात् व्यायाम और अस्त्र शस्त्रों का चलाना सीखें।

[४४]

योगसाधन

पृथिव्याऽ ग्रहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥१७।६७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे किये हुये योग के अङ्गों के अनुष्ठान, सयमसिद्धि अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि में परिपूर्ण (ग्रहम्) मैं (पृथिव्या) पृथिवी के बीच (अन्तरिक्षम्) आकाश को (उद्, आ, अरुहम्) उठ जाऊं वा (अन्तरिक्षात्) आकाश से (दिवम्) प्रकाशमान् सूर्य लोक को (आ, अरुहम्) चढ जाऊं वा (नाकस्य) सुख करने हार (दिव) प्रकाशमान उस सूर्य लोक के (पृष्ठात्) समीप से (स्व) अत्यन्त सुख और (ज्योति) ज्ञान के प्रकाश को (ग्रहम्) मैं (अगाम्) प्राप्त होऊं वैसा तुम भी आचरण करो।

भावार्थ—जब मनुष्य अपने आत्मा के साथ परमात्मा के योग को प्राप्त होना है तब अणिमादि सिद्धि उत्पन्न होती है उस के पीछे कहीं से न रुकने वाली गति से अभीष्ट स्थानों को जा सकता है, अन्यथा नहीं।

[४५]

मेरे कर्म यज्ञिय हों

व्रत च म ऽऋतवश्च मे तपश्चमे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रेऽ ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पान्ताम् ॥१८।२३॥

पदार्थ —(मे) मेरे (व्रतम्) सत्याचरण के नियम की पालना (च) और सत्य कहना और सत्य उपदेश (मे) मेरे (ऋतव:) वसन्त आदि ऋतु (च) और उत्तरायण दक्षिणायन (मे) मेरा (तप:) प्राणायाम (च) तथा धर्म का आचरण, शीत उष्ण आदि का सहना (मे) मेरा (सवत्सर.) साल (च) तथा कल्प महाकल्प आदि (मे) मेरे (अहोरात्रे) दिन रात (ऊर्वष्ठीवे) जघा और घोटू (बृहद्रथन्तरे) बड़ा पदार्थ, अत्यन्त सुन्दर रथ तथा (च) घोड़े व बैल (यज्ञेन) धर्मज्ञान आदि के आचरण और काल चक्र के भ्रमण के अनुष्ठान से (कल्पन्ताम्) समर्थ हो।

भावार्थ:—जो पुरुष नियम किये हुये समय मे काम और निरन्तर धर्म का आचरण करते है वे चाही हुई सिद्धि को पाते हैं।

[४४]

योगसाधन

पृथिव्याऽ अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥१७।६७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे किये हुये योग के अङ्गों के अनुष्ठान, सयमसिद्धि अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि मे परिपूर्ण (अहम्) मैं (पृथिव्या.) पृथिवी के बीच (अन्तरिक्षम्) आकाश को (उद्, आ, अरुहम्) उठ जाऊ वा (अन्तरिक्षात्) आकाश से (दिवम्) प्रकाशमान सूर्य लोक को (आ, अरुहम्) चढ जाऊ वा (नाकस्य) सुख करने हारे (दिव.) प्रकाशमान उस सूर्य लोक के (पृष्ठात्) समीप से (स्व.) अत्यन्त सुख और (ज्योति·) ज्ञान के प्रकाश को (अहम्) मैं (अगाम्) प्राप्त होऊ वैसा तुम भी आचरण करो ।

भावार्थ—जब मनुष्य अपने आत्मा के साथ परमात्मा के योग को प्राप्त होता है तब अणिमादि सिद्धि उत्पन्न होती है उस के पीछे कही से न रुकने वाली गति से अभीष्ट स्थानो को जा सकता है, अन्यथा नही ।

[४५]

मेरे कर्म यज्ञिय हों

व्रत च म ऽऋतवश्च मे तपश्चमे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रेऽ ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पान्ताम् ॥१८।२३॥

पदार्थ—(मे) मेरे (व्रतम्) सत्याचरण के नियम की पालना (च) और सत्य कहना और सत्य उपदेश (मे) मेरे (ऋतव) वसन्त आदि ऋतु (च) और उत्तरायण दक्षिणायन (मे) मेरा (तप) प्राणायाम (च) तथा धर्म का आचरण, शीत उष्ण आदि का सहना (मे) मेरा (संवत्सर) साल (च) तथा कल्प महाकल्प आदि (मे) मेरे (अहोरात्रे) दिन रात (ऊर्वष्ठीवे) जंघा और घोटू (बृहद्रथन्तरे) बड़ा पदार्थ, अत्यन्त सुन्दर रथ तथा (च) घोड़े व बैल (यज्ञेन) धर्मज्ञान आदि के आचरण और काल चक्र के भ्रमण के अनुष्ठान से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों।

भावार्थः—जो पुरुष नियम किये हुये समय मे काम और निरन्तर धर्म का आचरण करते है वे चाही हुई सिद्धि को पाते हैं।

[४६]

सब मे प्रेम

रुच नो धेहि ब्राह्मणेषु रुच ँ राजसु नस्कृधि।
रुच विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥१८।४८॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा विद्वन्! आप (न) हम लोगो के (ब्राह्मणेषु) ब्रह्मवेत्ता विद्वानो म (रुचा) प्रीति स (रुचम्) प्रीति को (धेहि) धरा स्थापन करो (न) हम लोगो के (राजसु) राजपूत क्षत्रिया म प्रीति स (रुचम्) प्रीति का (कृधि) करो। (विश्येषु) प्रजा जनो मे हुए वैश्या म तथा (शूद्रेषु) शूद्रा म प्रीति से (रुचम्) प्रीति को और (मयि) मुझ म भी प्रीति से (रुचम्) प्रीति को (धेहि) स्थापन करो।

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है। जैसे परमेश्वर पक्षपात को छोड ब्राह्मणादि वर्णों मे समान प्रीति करता है वैसे ही विद्वान् लोग भी समान प्रीति करें। जो ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव से विरुद्ध वर्तमान हैं वे सब नीच और तिरस्कार करने योग्य होते हैं।

[४७]

उसको जानो

एतं जानाथ परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद रूपमस्य ।
यदागच्छात्पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्ते कृणवाथाविरस्मै
१८।६०॥

पदार्थः—हे (सधस्थाः) एक साथ स्थान वाले (देवा.) विद्वानो ! तुम (परमे) परम उत्तम (व्योमन्) आकाश में व्याप्त (एतम्) इस परमात्मा को (जानाथ) जानो। (अस्य) और इसके व्यापक (रूपम्) सत्य चैतन्य मात्र आनन्दमय स्वरूप को (विद) जानो (यत्) जिस सच्चिदानन्द-लक्षण परमेश्वर को (देवयानैः) धार्मिक विद्वानों के (पथिभि) मार्गों से पुरुष (आगच्छात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे (अस्मै) इस परमेश्वर के लिये (इष्टापूर्ते) वेदोक्त यज्ञादि कर्म और उसके साधक स्मार्त्त कर्म को (आवि.) प्रकाशित (कृणवाथ) किया करो।

भावार्थः—सब मनुष्य विद्वानों के संग योगाभ्यास और धर्म के आचरण से परमेश्वर को अवश्य जानें। ऐसा न करें तो यज्ञ आदि श्रौत स्मार्त कर्मों को नहीं सिद्ध करा सकें और न मुक्ति पा सकें।

[४८]

शत्रु दमन

वि नऽइन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।
योऽअस्माँ२ ऽअभिदासत्यधरं गमया तमः ॥१८।७०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परम बलयुक्त सेना के पति! तू (मृध) संग्रामों को (वि, जहि) विशेष करके जीत (पृतन्यत) सेनायुक्त (न.) हमारे शत्रुओं को (नीचा) नीच गति को (यच्छ) प्राप्त कर। (य) जो (अस्मान्) हम को (अभिदासति) नष्ट करने की इच्छा करता है उस को (अधरम्) अधोगति रूप (तम) अन्धकार को (गमय) प्राप्त कर।

भावार्थः—सेनापति को योग्य है कि संग्रामों को जीते। उस विजयकारक संग्राम से नीच कर्म करने हारों का निरोध करे। राजप्रजाओं में विरोध करने हारे को अत्यन्त दण्ड देवे।

[४६]

व्रत का फल

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥१६।३०॥

पदार्थः—जो बालक, कन्या व पुरुष (व्रतेन) ब्रह्मचर्यादि नियमों से (दीक्षाम्) ब्रह्मचर्यादि सत्कर्मों के आरम्भ रूप दीक्षा को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दीक्षया) उस दीक्षा से (दक्षिणाम्) प्रतिष्ठा और धन को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दक्षिणा) उस प्रतिष्ठा वा धन रूप से (श्रद्धाम्) सत्य के धारण मे प्रीतिरूप श्रद्धा को (आप्नोति) प्राप्त होता है वा उस (श्रद्धया) श्रद्धा से जिसने (सत्यम्) नित्य पदार्थ वा व्यवहारो मे उत्तम परमेश्वर वा धर्म की (आप्यते) प्राप्ति की है वह सुखी होता है।

भावार्थ.—कोई भी मनुष्य विद्या, अच्छी शिक्षा और श्रद्धा के बिना सत्य व्यवहारो को प्राप्त होने और दुष्ट व्यवहारो के छोडने को समर्थ नही होता।

[५०]

पवित्रता

पुनन्तु मा देवजना पुनन्तु मनसा धिय ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेद पुनीहि मा ॥१६।३९॥

पदार्थ—हे (जातवेद) उत्पन्न हुए जनो में ज्ञानी विद्वन्! जैसे (देवजना) विद्वान् जन (मनसा) विज्ञान और प्रीति से (मा) मुझ को (पुनन्तु) पवित्र कर और हमारी (धिय) बुद्धियों को (पुनन्तु) पवित्र कर और (विश्वा) सम्पूर्ण (भूतानि) भूत प्राणिमात्र मुझ को (पुनन्तु) पवित्र करें वैसे आप (मा) मुझ को (पुनीहि) पवित्र कीजिये।

भावार्थ—विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्रियों का मुख्य कर्तव्य यही है कि वे पुत्र और पुत्रियों को ब्रह्मचर्य और सुशिक्षा से विद्वान् और विदुषी, सुन्दर शील युक्त सदा किया करें।

[५१]

विद्वान् पाप से बचायें

द्रुपदादिव मुमुचान स्विन्न स्नातो मलादिव ।
पूत पवित्रेणेवाज्यमाप शुन्धन्तु मैनस ॥२०।२०॥

पदार्थ —हे (आप) प्राण वा जलो के समान निर्मल विद्वान् लोगो ! आप (द्रुपदादिव मुमुचान) वृक्ष से जैसे फल, रस, पुष्प, पत्ता आदि अलग होते वा जैसे (स्विन्न) स्वेद युक्त मनुष्य (स्नात) स्नान करके (मलादिव) मल से छूटता है वैसे वा (पवित्रेणेव) जैसे पवित्र करने वाले पदार्थ से (पूतम) शुद्ध (आज्यम्) घृत होता है वैसे (मा) मुझ को (एनस) अपराध से पृथक् करके (शुन्धन्तु) शुद्ध कर ।

भावार्थ —इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । अध्यापक, उपदेशक लोगो को योग्य है कि इस प्रकार सब को अच्छी शिक्षा से युक्त करें जिससे वे शुद्ध आत्मा, नीरोग शरीर और धर्मयुक्त कर्म करने वाले हों ।

[५४]

स्वयं पुरुषार्थ कर

स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।
महिमा ते ऽन्येन न सन्नशे ॥ २३।१५॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) बोध चाहने वाले जन तू (स्वयम्) आप (तन्वम्) अपने शरीर को (कल्पयस्व) समर्थ कर। (स्वयम्) आप अच्छे विद्वानों को (यजस्व) मिल और (स्वयम्) आप उन की (जुषस्व) सेवा कर जिससे (ते) तेरी (महिमा) बड़ाई, तेरा प्रताप (अन्येन) और के साथ (न) मत (सनशे) नष्ट हो।

भावार्थः—जैसे अग्नि आप से आप प्रकाशित होना आप मिलता तथा आप सेवा को प्राप्त है वैसे जो बोध चाहने वाले जन आप पुरुषार्थ युक्त हो हैं उन का प्रताप, बड़ाई कभी नहीं नष्ट होती।

[५५]

मांस भक्षक को दण्ड

उत्सक्थ्याऽअव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन्।
य स्त्रीणां जीवभोजनः ॥ २३ । २१ ॥

पदार्थः—हे(वृषन्) शक्तिमन्! (य.) जो (स्त्री-णाम्) स्त्रियों के बीच (जीवभोजनः) प्राणियों का मांस खाने वाला व्यभिचारी पुरुष वा पुरुषों के बीच उक्त प्रकार की व्यभिचारिणी स्त्री वर्तमान हो उस पुरुष और उस स्त्री को बांध कर (उत्सक्थ्या:) ऊपर को पग और नीचे को शिर कर ताड़ना करके और अपनी प्रजा के मध्य (अव,गुदम्) उत्तम सुख को (धेहि) धारण करो और (अञ्जिम्) अपने प्रकट न्याय को (सचारय) भली भांति चलाओ।

भावार्थ.—हे राजन्! जो विषय सेवा में रमते हुए जन वा वैसी स्त्री व्यभिचार को बढ़ावें उन उन को प्रबल दण्ड से शिक्षा देनी चाहिये।

[५६]

पशुओं से शिक्षा

भूम्याऽआखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्तान् दिवे ।
कशान् दिग्भ्यो नकुलान् बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्य ॥
॥ २४।२६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे भूमि के जन्तुओं के गुण जानने वाला पुरुष (भूम्यै) भूमि के लिये (आखून्) मूषों (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्ष के लिये (पाङ्क्तान्) पंक्ति रूप से चलने वाले विशेष पक्षियों (दिवे) प्रकाश के लिये (कशान्) कश नाम के पक्षियों (दिग्भ्य) पूर्व आदि दिशाओं के लिये (नकुलान्) नेउलों और (अवान्तरदिशाभ्य) अवान्तर अर्थात् कोण दिशाओं के लिये (बभ्रुकान्) भूरे भूरे विशेष नेउलों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ।

भावार्थ—जो मनुष्य भूमि आदि के समान मूषे आदि के गुणों को जानकर उपकार करें वे बहुत विज्ञान वाले हों।

[५७]

भद्र सुनें तथा भद्र देखें

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि
देवहितं यदायुः ॥ २५ । २१ ॥

पदार्थ—हे (यजत्राः) संग करने वाले (देवाः) विद्वानो ! आप लोगों के साथ से हम (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम्) जिस से सत्यता जानी जावे उस वचन को (शृणुयाम्) सुनें। (अक्षभि) आँखों से (भद्रम्) कल्याण को (पश्येम) देखें (स्थिरैः) दृढ (अङ्गैः) अवयवों से (तुष्टुवांसः) स्तुति करते हुए (तनूभिः) शरीरों से (यत्) जो (देवहितम्) विद्वानों के लिये सुख करने हारी (आयुः) अवस्था है उस को (वि, अशेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हों।

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के साथ से विद्वान् होकर सत्य सुनें, सत्य देखें और जगदीश्वर की स्तुति करें तो वे बहुत अवस्था वाले हों। मनुष्य को चाहिये कि असत्य का सुनना, खोटा देखना, झूठी स्तुति प्रार्थना प्रशंसा और व्यभिचार कभी न करें।

[५८]

विद्वान् कहां बनते हैं ?

उपह्वरे गिरीणाᳫं संगमे च नदीनाम्।
धिया विप्रोऽअजायत ॥ २६ । १५ ॥

पदार्थ.—जो मनुष्य (गिरीणाम्) पर्वतों के (उपह्वरे) निकट (च) और (नदीनाम्) नदियों के (सङ्गमे) मेल में योगाभ्यास से ईश्वर की और विचार से विद्या की उपासना करे वह (धिया) उत्तम बुद्धि वा कर्म से युक्त (विप्र.) विचार शील बुद्धिमान् (अजायत) होता है।

भावार्थ—जो विद्वान् लोग पढ के एकान्त में विचार करते हैं वे योगियों के तुल्य उत्तम बुद्धिमान् होते हैं।

[५६]

तुझ सा कोई नहीं

न त्वावाँ २ ऽ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो
न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो
गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २७ । ३६ ॥

पदार्थः—हे (मघवन्) पूजित उत्तम ऐश्वर्य से युक्त (इन्द्र) सब दुःखों के विनाशक परमेश्वर ! (वाजिनः) वेग वाले (गव्यन्तः) उत्तम वाणी बोलते हुए (अश्वायन्तः) अपने को शीघ्रता चाहते हुए हम लोग (त्वा) आप की (हवामहे) स्तुति करते हैं क्योंकि जिस कारण कोई (अन्यः) अन्य पदार्थ (त्वावान्) आप के तुल्य (दिव्य) शुद्ध (न) न कोई (पार्थिव) पृथिवी पर प्रसिद्ध (न) न कोई (जातः) उत्पन्न हुआ और (न) न (जनिष्यति) होगा इससे आप ही हमारे उपास्य देव हैं ।

भावार्थः—न कोई परमेश्वर के तुल्य शुद्ध हुआ, न होगा और न है, इसी से सब मनुष्यों को चाहिये कि इस को छोड़ अन्य किसी की उपासना इस के स्थान मे कदापि न करें । यही कर्म इस लोक परलोक मे आनन्ददायक जानें ।

[६०]

सब प्रकार से रक्षा करो

पाहि नोऽ अग्नऽएकया पाह्यु त द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥
॥ २७ । ४३ ॥

पदार्थ —हे (वसो) सुन्दर वास देन हारे ! (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् ! आप (एकया) उत्तम शिक्षा से (न) हमारी (पाहि) रक्षा कीजिये (द्वितीयया) दूसरी अध्यापन क्रिया से (पाहि) रक्षा कीजिये (तिसृभि) कर्म उपासना ज्ञान को जताने वाली तीन (गीर्भि) वाणियों से (पाहि) रक्षा कीजिये । हे (ऊर्जाम्) बलों के (पते) रक्षक ! आप हमारी (चतसृभि) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनका विज्ञान कराने वाली चार प्रकार की वाणी से (उत) भी (पाहि) रक्षा कीजिये ।

भावार्थ —सत्यवादी धर्मात्मा आप्तजन उपदेश करने और पढाने से भिन्न किसी साधन को मनुष्य का कल्याणकारक नहीं जानते इस से नित्यप्रति अज्ञानियों पर कृपा कर सदा उपदेश करते और पढाते हैं ।

[६१]

धन और ज्ञान दो

केतुं कृण्वन्नकेतवेपेशो मर्याऽअपेशसे ।
समुषद्भिरजायथा ॥ २९ । ३७ ॥

पदार्थ —हे विद्वन् पुरुष ! जैसे (मर्या) मनुष्य (अपेशसे) जिसके सुवर्ण नही है उस के लिये (पेश) सुवर्ण को और (अकेतवे) जिस को बुद्धि नही है उस के लिये (केतुम्) बुद्धि को करते है उन (उषद्भि) होम करने वाले यजमान पुरुषो के साथ बुद्धि और धन को (कृण्वन्) करते हुए आप (सम्, अजायथा) सम्यक् प्रसिद्ध हूजिये ।

भावार्थ —इस मन्त्र मे वाचक लुप्तोपमा अलकार है। वे ही आप्त जन हैं जो अपने आत्मा के तुल्य अन्यो का भी सुख चाहते हैं। उन्ही के सग से विद्या की प्राप्ति अविद्या की हानि, धन का लाभ और दरिद्रता का नाश होता है।

[६२]

धनुष से विजय

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम
धन्वना तीव्राः समदो जयेम।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति
धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम् ॥ २६ । ३६ ॥

पदार्थ—हे वीर पुरुषो! जैसे हम लोग जो (धनु) शस्त्र अस्त्र (शत्रो) वैरी की (अपकामम्) कामनाओं को नष्ट (कृणोति) करता है उस (धन्वना) धनुष आदि शस्त्र अस्त्र विशेष से (गा) पृथिवियों को और (धन्वना) उक्त शस्त्र विशेष से (आजिम्) संग्राम को (जयेम) जीतें (धन्वना) तोप आदि शस्त्र अस्त्रों से (तीव्राः) तीव्र वेग वाली (समदः) आनन्द के साथ वर्तमान शत्रुओं की सेना को (जयेम) जीतें। (धन्वना) धनुष से (सर्वाः) सब (प्रदिशः) दिशा प्रदिशाओं को (जयेम) जीतें वैसे तुम लोग भी इस धनुष आदि से जीतो।

भावार्थ—जो मनुष्य धनुर्वेद के विज्ञान की क्रियाओं में कुशल हों तो सब जगह ही उन का विजय प्रकाशित होवे जो विद्या विनय और शूरता आदि गुणों से भूगोल के एक राज्य को चाहें तो कुछ भी अशक्य न हो।

[६३]

पत्थर के समान शरीर

ऋजीते परिवृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥२६।४६॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! आप (ऋजीते) सरल व्यवहार में (नः) हमारे शरीर से रोगों को (परि, वृङ्ग्धि) सब ओर से पृथक् कीजिये जिस से (नः) हमारा (तनूः) शरीर (अश्मा) पत्थर के तुल्य दृढ़ (भवतु) हो जो (सोमः) उत्तम औषधि है उस और जो (अदितिः) पृथिवी है उन दोनों का आप (अधि, ब्रवीतु) अधिकार उपदेश कीजिये और (नः) हमारे लिये (शर्म) सुख का घर (यच्छतु) दीजिये ।

भावार्थः—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य, औषधि, पथ्य और सुन्दर नियमों के सेवन से शरीरों की रक्षा करें तो उन के शरीर दृढ होवे । जैसे शरीरों का पृथिवी आदि का बना घर है वैसे जीव का यह शरीर घर है ।

[६४]

पक्षपात रहित न्याय

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः ।
सवितारं नृचक्षसम् ॥ ३० । ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस (वसो) सुखों के निवास के हेतु (चित्रस्य) आश्चर्यरूप (राधस) धन का (विभक्तारम्) भव के उत्पादक (नृचक्षसम्) सब मनुष्यो के अन्तर्यामीस्वरूप से सब कामो के देखने हारे परमात्मा की हम लोग (हवामहे) प्रशंसा करें उसकी तुम लोग भी प्रशंसा करो।

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचक लुप्तोपमालंकार है। हे राजन् ! जैसे परमेश्वर अपने अपने कर्मों के अनुकूल सब जीवो को फल देता है वैसे आप भी देओ। जैसे जगदीश्वर जैसा जिस का पाप वा पुण्य रूप जितना कर्म है उतना वैसा फल उस के लिये देता है वैसा आप भी जिस का जैसा वस्तु वा जितना कर्म है उसको वैसा वा उतना फल दीजिये। जैसे परमेश्वर पक्षपात को छोड के सब जीवो मे वर्तता है वैसे आप भी हूजिये।

[६५]

ईश्वर का स्वरूप

सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिꣳ सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥३१।१॥

पदार्थ.—हे मनुष्यो ! जो (सहस्रशीर्षा) सब प्राणियों के हजारों सिर (सहस्राक्षः) हजारों नेत्र और (सहस्रपात्) असंख्य पाद जिसके बीच मे हैं ऐसा (पुरुषः) सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक जगदीश्वर है (सः) वह (सर्वतः) सब देशों से (भूमिम्) भूगोल मे (स्पृत्वा) सब ओर से व्यापक होके (दशागुलम्) पाच स्थूल भूत पाच सूक्ष्म भूत ये दस जिसके अवयव हैं उस सब जगत् को (अति, अतिष्ठत्) उल्लघ कर स्थित होता अर्थात् सब से पृथक् भी स्थिर होता है ।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस पूर्ण परमात्मा मे हम मनुष्य आदि के असख्य शिर आंखे और पग आदि अवयव है जो भूमि आदि से उपलक्षित हुए पांच स्थूल और पाच सूक्ष्म भूतो से युक्त जगत् को अपनी सत्ता से पूर्ण कर जहा जगत् नहीं वहा भी पूर्ण हो रहा है उस सब जगत् के बनाने वाले परिपूर्ण सच्चिदानन्द स्वरूप नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त-स्वभाव परमेश्वर को छोड़ के अन्य किसी की उपासना तुम कभी न करो किन्तु उस ईश्वर की उपासना से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करो ।

[६६

वेदों का प्रकाशक

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽ ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाᳬसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥
॥ ३१ । ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को चाहिये कि (तस्मात्) उस पूर्ण (यज्ञात्) अत्यन्त पूजनीय (सर्वहुत) जिसके अर्थ सब लोग समस्त पदार्थों को देते वा समर्पण करते उस परमात्मा से (ऋचः) ऋग्वेद (सामानि) सामवेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होते (तस्मात्) उस परमात्मा से (छन्दाᳬसि) अथर्व वेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होता और (तस्मात्) उस पुरुष से (यजु) यजुर्वेद (अजायत) उत्पन्न होता है उसको जानो।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जिससे सब वेद उत्पन्न हुए हैं उस परमात्मा की उपासना करो। वेदो को पढो और उसकी आज्ञा के अनुकूल वर्त्त के सुखी होओ।

वर्ण व्यवस्था

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याꣳ शूद्रोऽअजायत ॥
॥ ३१ । ११ ॥

पदार्थ —हे जिज्ञासु लोगो ! तुम (अस्य) इस ईश्वर की सृष्टि मे (ब्राह्मण) वेद, ईश्वर का ज्ञाता इन का सेवक वा उपासक (मुखम्) मुख के तुल्य उत्तम ब्राह्मण (आसीत्) है (बाहू) भुजाओ के तुल्य बल पराक्रमयुक्त (राजन्य) राजपूत (कृत) किया (यत्) जो (ऊरु) जाघो के तुल्य वेगादि कर्म करने वाला (तत्) वह (अस्य) इस का (वैश्य) सर्वत्र प्रवेश करने हारा वैश्य है। (पद्भ्याम्) सेवा और अभिमान् रहित होने से (शूद्र) मूर्खपन आदि गुणो से युक्त शूद्र (अजायत) उत्पन्न हुआ ये उत्तर क्रम से जानो।

भावार्थ —जो मनुष्य विद्या और शमादि उत्तम गुणो मे मुख के तुल्य उत्तम हो वे ब्राह्मण, जो अधिक पराक्रम वाले, भुजा के तुल्य कार्यों को सिद्ध करने हारे हो वे क्षत्रिय, जो व्यवहार विद्या मे प्रवीण हो वे वैश्य और जो सेवा मे प्रवीण विद्या-हीन पगो के समान मूर्खपन आदि नीच गुणयुक्त हैं वे शूद्र करने और मानने चाहियें।

मुक्ति का मार्ग

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः
पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ ३१ । १८ ॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु पुरुष ! (अहम्) मैं जिस (एतम्) इस पूर्वोक्त (महान्तम्) बड़े बड़े गुणों से युक्त (आदित्य वर्णम्) सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप (तमसः) अन्धकार व अज्ञान से (परस्तात्) पृथक् वर्तमान (पुरुषम्) स्वरूप से सर्वत्र पूर्ण परमात्मा को (वेद) जानता हूँ (तम्, एव) उसी को (विदित्वा) जान कर (मृत्युम्) दुःखदायी मरण को (अति, एति) उल्लंघन कर जाते हो किन्तु (अन्यः) इस से भिन्न (पन्थाः) मार्ग (अयनाय) अभीष्ट स्थान मोक्ष के लिये (न, विद्यते) नहीं विद्यमान है।

भावार्थः—यदि मनुष्य इस लोक परलोक के सुखों की इच्छा करें तो सब से अति बड़े स्वय प्रकाश और आनन्द स्वरूप अज्ञान के लेश से पृथक् वर्तमान परमात्मा को जान के ही मरणादि अथाह दुःख सागर से पृथक् हो सकते हैं। यही सुखदाई मार्ग है इस से भिन्न कोई भी मनुष्य की मुक्ति का मार्ग नहीं है।

[६६]

परमात्मा के अनेक नाम

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ताऽ आपः स प्रजापतिः ॥
॥ ३२ । १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (तत्) वह सर्वज्ञ, सर्व व्यापी, सनातन, अनादि सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, न्यायकारी, दयालु, जगत् का स्रष्टा, धारणकर्ता और सब का अन्तर्यामी (एव) ही (अग्नि.) ज्ञानस्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि (तत्) वह (आदित्यः) प्रलय समय सब को ग्रहण करने से आदित्य (तत्) वह (वायु) अनन्त बलवान् और सब का धर्ता होने से वायु (तत्) वह (चन्द्रमा) आनन्दस्वरूप और आनन्दकारक होने से चन्द्रमा (तत् एव) वही (शुक्रम्) शीघ्रकारी वा शुद्ध भाव से शुक्र (तत्) वह (ब्रह्म) महान् होने से ब्रह्म (ता.) वह (आपः) सर्वत्र व्यापक होने से आप (उ) और (सः) वह (प्रजापति) सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है ऐसा तुम लोग जानो ।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर के ये अग्नि आदि गौण नाम हैं वैसे और भी इन्द्र आदि नाम हैं उसी की उपासना फल वाली है ऐसा जानो ।

हृदय गुहा में दर्शन

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।
तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं स ओत प्रोतश्च
विभू प्रजासु ॥ ३२ । ८ ॥

पदार्थ —हे मनुष्यो ! (यत्र) जिस मे (विश्वम्) सब जगत् (एकनीडम्) एक आश्रम वाला (भवति) होता है (तत्) उस (गुहा) बुद्धि वा गुप्त कारण में (निहितम्) स्थित (सत्) नित्य चेतन ब्रह्म को (वेन) पण्डित, विद्वान् जन (पश्यत्) ज्ञान दृष्टि से देखता है (तस्मिन्) उस मे (इदम्) यह (सर्वम्) सब जगत् (सम, एति) प्रलय समय मे संगत होता (च) और उत्पत्ति समय म (वि) पृथक् स्थूलरूप (च) भी होता है (स) वह (विभू) विविध प्रकार व्याप्त हुआ (प्रजासु) प्रजाओ म (ओत) ठाडे सूतो म जैसे वस्त्र (च) तथा (प्रोत) आडे सूतो मे जैसे वस्त्र वैसे ओत प्रोत हो रहा है वही सब को उपासना करने योग्य है ।

[७१]

मेधा बुद्धि

यां मेधां देवगणा पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥
३२ । १४ ॥

भावार्थः—हे (अग्ने) स्वयं प्रकाशरूप होने से विद्या के जताने हारे ईश्वर ! वा अध्यापक विद्वन् ! (देवगणा) अनेको विद्वान् (च) और (पितर) रक्षा करने हारे ज्ञानी लोग (याम्) जिस (मेधाम्) बुद्धि वा धन को (उपासते) प्राप्त होके सेवन करते है (तया) उस (मेधया) बुद्धि वा धन से (माम्) मुझ को (अद्य) आज (स्वाहा) सत्य वाणी से (मेधाविनम्) प्रशसित बुद्धि वा धन वाला (कुरु) कीजिये ।

भावार्थः—मनुष्य लोग परमेश्वर की उपासना और आप्त विद्वान् की सम्यक् सेवा करके शुद्ध विज्ञान और धर्म से हुए धन को प्राप्त होने की इच्छा करें और दूसरो को भी ऐसे ही प्राप्त करावें ।

[७२]

दुष्ट संहार

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्रऽआहुत ॥ ३३ । ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वन्! जैसे (समिद्ध) सम्यक् प्रदीप्त (शुक्र) शीघ्रकारी (अग्नि) सूर्यादि रूप अग्नि (वृत्राणि) मेघ के अवयवों को (जङ्घनत्) शीघ्र हटाता है वैसे (द्रविणस्यु) अपने को धन चाहने वाले (आहुत) बुलाये हुए आप (विपन्यया) विशेष व्यवहार की युक्ति से दुष्टों को शीघ्र मारिये।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। जैसे व्यवहार का जानने वाला पुरुष धन को पाके सत्कार को प्राप्त होकर दोषों को नष्ट करता है वैसे सूर्य मेघ को ताड़ना देता है।

[७३]

महान् सौभाग्य के लिये बल लगा

अग्ने शर्द्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्मानि सन्तु।
सं जास्पत्यꣳ सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभितिष्ठा महाꣳसि ॥ ३३ । १२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् वा राजन्! आप (महते) बडे (सौभगाय) सौभाग्य के अर्थ (शर्द्ध) दुष्ट गुणो और शत्रुओ के नाशक बल को (आकृणुष्व) अच्छे प्रकार उन्नत कीजिये जिस से (तव) आप के (द्युम्नानि) धन वा यश (उत्तमानि) श्रेष्ठ (सन्तु) हो आप (जास्पत्यम्) स्त्री पुरुष के भाव को (सुयमम्) सुन्दर नियम युक्त शास्त्रानुकूल ब्रह्मचर्य युक्त (सम्, आ) सम्यक्, अच्छे प्रकार कीजिये और आप (शत्रूयताम्) शत्रु बनने की इच्छा करते हुए मनुष्यो के (महांसि) तेजो को (अभि, तिष्ठ) तिरस्कृत कीजिये।

भावार्थः—जो अच्छे संयम मे रहने वाले मनुष्य हैं उनके बडा ऐश्वर्य, बल, कीर्ति, उत्तम स्वभाव वाली स्त्री और शत्रुओ का पराजय होता है।

[७४]

विद्वानों के प्रिय बनो

त्वे ऽ अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥
॥ ३३ । १४ ॥

पदार्थः—हे (स्वाहुत) सुन्दर प्रकार से विद्या को ग्रहण किये हुए (अग्ने) विद्वन् ! (ये) जो (जनानाम्) मनुष्यों के बीच वीर पुरुष (यन्तारः) जितेन्द्रिय (मघवान.) बहुत धन से युक्त जन (गोनाम्) पृथिवी वा गो आदि के (ऊर्वान्) हिंसकों को (दयन्त) मारते हैं वे (सूरयः) विद्वान् लोग (त्वे) आप के (प्रियासः) प्यारे (सन्तु) हों ।

भावार्थ.—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को ग्रहण कर विद्वानों के प्यारे हों, दुष्टों को मार और गो आदि की रक्षा कर मनुष्यों के प्यारे होते हैं वैसे तुम भी करो ।

[७५]

राजा की योग्यता

यदद्य सूर ऽ उदिते ऽ नागा मित्रोऽअर्य्यमा ।
सुवाति सविता भगः ॥ ३३ । २० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (अद्य) आज (सूरे) सूर्य के (उदिते) उदय होने अर्थात् प्रात. काल (अनागाः) अधर्म के आचरण से रहित (मित्र) सुहृद् (सविता) राज्य के नियमोंसे प्रेरणा करने हारा (भग) ऐश्वर्यवान् (अर्य्यमा) न्यायकारी राजा स्वस्थता को (सुवाति) उत्पन्न करे वह राज्य करने के योग्य होवे ।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य के उदय होते अन्धकार निवृत्त होके प्रकाश के होने में सब लोग आनन्दित होते हैं वैसे ही धर्मात्मा राजा के होते प्रजाओं में सब प्रकार से स्वस्थता होती है ।

[७६]

सृष्टि के पदार्थों का उपयोग

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम्।
आदित्यान्मारुतं गणम् ॥ ३३ । ४५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य! जैसे हम लोग (इन्द्रवायू) बिजली, पवन (बृहस्पतिम्) बडे लोगो के रक्षक सूर्य (मित्रा) प्राण (अग्निम्) अग्नि (पूषणम्) पुष्टिकारक (भगम्) ऐश्वर्य (आदित्यान्) बारह महीनों और (मारुतम्) वायुसम्बन्धि (गणम्) समूह को जान के उपयोग मे लावें वैसे तुम लोग भी उनका प्रयोग करो।

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचक लुप्तोपमालकार है। मनुष्यो को चाहिये कि सृष्टिस्थ विद्युत् आदि पदार्थों को जान और सम्यक् प्रयोग कर कार्यों को सिद्ध करें।

[७७]

सुख देने वाली सन्तान

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये ।
सुमृडीका भवन्तु नः ॥ ३३ । ७७ ॥

पदार्थः—(ये) जो (नः) हमारे (सूनवः) सन्तान (अमृतस्य) नाश रहित परमेश्वर के सम्बन्ध की वा नित्य वेद की (गिरः) वाणियों को (उप-शृण्वन्तु) अध्यापक आदि के निकट सुनें वे (नः) हमारे लिये (सुमृडीका) उत्तम सुख करने हारे (भवन्तु) होवें ।

भावार्थः—जो माता पिता अपने पुत्रों और कन्याओं को ब्रह्मचर्य के साथ वेद विद्या और उत्तम सुशिक्षा से युक्त कर शरीर और आत्मा के बल वाले करें तो उन सन्तानों के लिये अत्यन्त हित-कारी हों ।

पुरुषार्थी बनो और लक्ष्मी प्राप्त करो

चन्द्रमाऽअप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृह॑ हरिरेति कनिक्रदत् ॥
॥ ३३ । ६० ॥

पदार्थ —हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (सुपर्णः) सुन्दर चालो से युक्त (चन्द्रमा) शीतकारी चन्द्रमा (कनिक्रदत्) शीघ्र शब्द करते, हिन्सते हुए (हरिः) घोडो के तुल्य (दिवि) सूर्य के प्रकाश मे (अप्सु) अन्तरिक्ष के (अन्तः) बीच (आ, धावते) अच्छे प्रकार शीघ्र चलता है और (पुरुस्पृहम्) बहुतो के चाहने योग्य (बहुलम्) बहुत (पिशङ्गम्) सुवर्णादि के तुल्य वर्णयुक्त (रयिम्) शोभा, कान्ति को (एति) प्राप्त होता है वैसे पुरुषार्थी हुए वेग से लक्ष्मी को प्राप्त होओ।

भावार्थ —इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य से प्रकाशित चन्द्र आदि लोक अन्तरिक्ष मे जाते आते हैं, जैसे उत्तम घोडा शब्द करता हुआ शीघ्र भागता है वैसे हुए तुम लोग अत्युत्तम अपूर्व शोभा को प्राप्त होके सब को सुखी करो।

[७६]

शिव संकल्प

यस्मिन्नृचः साम यजूं ꣳ षि
यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिंश्चित्त ꣳ सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ३४ । ५ ॥

पदार्थः—(यस्मिन्) जिस मन में (रथनाभाविव, अराः) जैसे रथ के पहिये के बीच के काष्ठ में अरा लगे होते है वैसे (ऋचः) ऋग्वेद (साम) सामवेद (यजूंषि) यजुर्वेद (प्रतिष्ठिता) सब ओर से स्थित और (यस्मिन्) जिसमें अथर्ववेद स्थित है (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्तम्) सर्वपदार्थ सम्बन्धी ज्ञान (ओतम्) सूत में मणियों के समान संयुक्त है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) कल्याणकारी वेदादि सत्य शास्त्रों का प्रचाररूप संकल्प वाला (अस्तु) हो।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोगो को चाहिये, जिस मन के स्वस्थ रहने मे ही वेदादिविद्याओं का आधार और जिस मे सब व्यवहारों का ज्ञान एकत्र होता है उस अन्तःकरण को विद्या और धर्म के आचरण से पवित्र करो।

ईश्वरोपासना का फल

त्वं नो ऽ अग्ने तव देव पायुभि
र्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्य
निमेषꣳ रक्षमाणस्तव व्रते ॥ ३४ । १३ ॥

पदार्थ —हे (देव) उत्तम गुणकर्म स्वभाव युक्त (अग्ने) राजन् वा ईश्वर (तव) आप के (व्रते) उत्तम नियम मे वर्तमान (मघोन) बहुत धन युक्त हम लोगो को (तव) आपके (पायुभि) रक्षादि के हेतु कर्मों से (त्वम्) आप (रक्ष) रक्षा कीजिये। (च) और (न) हमारे (तन्व) शरीरों की रक्षा कीजिये। हे (वन्द्य) स्तुति के योग्य भगवन्! जिस कारण आप (अनिमेषम्) निरन्तर (रक्षमाण) रक्षा करते हुए (तोकस्य) सन्तान, पुत्र (तनये) पौत्र और (गवाम्) गौ आदि के (त्राता) रक्षक (असि) है इसलिए हम लोगो को सदा सत्कार और उपासना के योग्य हैं।

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य ईश्वर के गुण कर्म स्वभावो और आज्ञा की अनुकूलता मे वर्तमान हैं और जिन की ईश्वर और विद्वान् लोग निरन्तर रक्षा करने वाले हैं वे लक्ष्मी, दीर्घावस्था और सन्तानो से रहित कभी नही होते।

[८१]

अध्यापक उपदेशक के कर्तव्य

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृत
नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे निह्वये वा वृधे
च नो भवत वाजसातौ ॥ ३४ । २६ ।

पदार्थ —हे (दस्रा) दुःख के नाशक ! (वृषणा) सुख के वर्षाने वाले (अश्विना) सब विद्याओं मे व्याप्त अध्यापक और उपदेशक लोगो ! तुम दोनो (अस्मे) हमारी (वाचम्) वाणी (च) और (मनीषाम्) बुद्धि को (*अप्नस्वतीम्*) *प्रशस्त कर्मों वाली* (कृतम्) करो। (न) हमारे (अद्यूत्ये) द्यूत रहित स्थान मे हुए कर्म मे (अवसे) रक्षा के लिए स्थित करो (वाजसातौ) धन का विभाग करने हारे संग्राम मे (न) हमारी (वृधे) वृद्धि के लिये (भवतम्) उद्यत होओ जिन (वाम्) तुम्हारी (नि, ह्वये) निरन्तर स्तुति करता हूँ वे दोनो आप मेरी उन्नति करो।

भावार्थ—जो मनुष्य *निष्कपट, आप्त दयालु* विद्वानो का निरन्तर सेवन करते है वे प्रगल्भ धार्मिक विद्वान् होके सब ओर से बढते और विजयी होते हुए सब के लिये सुखदायी होते हैं।

[८२]

प्रातः वेला में भक्त की प्रार्थना

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्त स्याम ॥
॥ ३४ । ३६ ॥

पदार्थ—हे (भग) ऐश्वर्ययुक्त ! (प्रणेत) पुरुषार्थ के प्रेरक ईश्वर वा हे (भग) ऐश्वर्य के दाता ! (सत्यराध) विद्यमान पदार्थों में उत्तम धन वाले (भग) सेवने योग्य विद्वन् ! आप (न) हमारी (इमाम्) इस वर्तमान (धियम्) बुद्धि को (ददत्) देते हुए (उत, अव) उत्कृष्टता से रक्षा कीजिये। हे (भग) विद्यारूप ऐश्वर्य के दाता ईश्वर वा विद्वन् आप (गोभि) गौ आदि पशुओं (अश्वैं) घोड़े आदि सवारियों और (नृभि) नायक कुलनिर्वाहक मनुष्यों के साथ (न) हम को (प्र, जनय) प्रकट कीजिये। हे (भग) सेवा करते हुए विद्वन् ! जिस से हम लोग (नृवन्त) प्रशस्त मनुष्यों वाले (प्र स्याम) अच्छे प्रकार हों वैसे कीजिये।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जब जब ईश्वर की प्रार्थना तथा विद्वानों का संग करें तब तब बुद्धि ही की प्रार्थना वा श्रेष्ठ पुरुषों की चाहना किया करें।

[८३]

नियमित जीवन

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन ।
स्तोतारस्त ऽ इह स्मसि ॥ ३४ । ४१ ॥

पदार्थः—हे (पूषन्) पुष्टि कारक परमेश्वर वा आप्त विद्वन् ! (वयम्) हम लोग (तव) आपके (व्रते) स्वभाव या नियम मे इससे वर्तें कि जिससे (कदा, चन) कभी भी (न) न (रिष्येम) चित्त बिगाडे। (इह) इस जगत् मे (ते) आपके (स्तोतार) स्तुति करने वाले हुए हम सुखी (स्मसि) होते हैं।

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर के वा आप्त विद्वान् के गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल वर्तते हैं वे कभी नष्ट सुख वाले नही होते।

[८४]

जागरूक ही उसे पाते हैं

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः स समिन्धते।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ ३४ । ४४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (जागृवासः) अविद्या-रूप निद्रा से उठके चेतन हुए (विपन्यवः) विशेष स्तुति करने योग्य वा ईश्वर की स्तुति करने हारे (विप्रासः) बुद्धिमान् योगी लोग (विष्णोः) सर्वत्र अभिव्यापक परमात्मा का (यत्) जो (परमम्) उत्तम (पदम्) प्राप्त होने योग्य मोक्षदायी स्वरूप है (तत्) उसको (सम्, इन्धते) सम्यक् प्रकाशित करते हैं उनके सत्संग से तुम लोग भी वैसे होओ।

भावार्थ—जो योगाभ्यास आदि सत्कर्मों को करके शुद्धमन और आत्मा वाले धार्मिक पुरुषार्थी जन हैं वे ही व्यापक परमेश्वर के स्वरूप को जानने और उसको प्राप्त होने योग्य होते हैं अन्य नहीं।

[८५]

परमात्मा की ही पूजा

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥ ३५ । ४ ॥

पदार्थः—हे जीवो ! जिस जगदीश्वर ने (अश्वत्थे) कल ठहरेगा वा नहीं ऐसे अनित्य संसार में (वः) तुम लोगों की (निषदनम्) स्थिति की (पर्णे) पत्ते के तुल्य चन्चल जीवन मे (व) तुम्हारा (वसति) निवास (कृता) किया (यत्) जिस (पुरुषम्) सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा को (किल) ही (सनवथ) सेवन करो उसके साथ (गोभाज') पृथिवी, वाणी, इन्द्रिय या किरणों का सेवन करने वाले (इत्) ही तुम लोग प्रयत्न के साथ धर्म मे स्थिर (असथ) होओ।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अनित्य संसार में नित्य शरीरों और पदार्थों को प्राप्त होके क्षणभंगुर जीवन मे धर्माचरण के साथ नित्य परमात्मा की उपासना कर आत्मा और परमात्मा के संयोग से उत्पन्न हुए नित्य सुख को प्राप्त हों।

[८६]

ब्रह्मचर्य पालन

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां
यस्ते अन्य इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः
प्रजा ꣳ रीरिषो मोत वीरान्॥ ३५। ७॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (यः) जो (ते) तेरा (देवयानात्) जिस मार्ग से विद्वान् लोग चलते उस से (इतरः) भिन्न (अन्यः) और मार्ग है उस (पन्थाम्) मार्ग को (मृत्यो) मृत्यु (परा, इह) दूर जावे जिस कारण तू (परम्) उत्तम देवमार्ग को (अनु) अनुकूलता से प्राप्त हो इसी से (चक्षुष्मते) उत्तम नेत्र वाले (शृण्वते) सुनते हुए (ते) तेरे लिये (ब्रवीमि) उपदेश करता हूँ जैसे मृत्यु (नः) हमारी प्रजा को न मारे और वीर पुरुषों को भी न मारे वैसे तू (प्रजाम्) सन्तानादि को (मारीरिषः) मत मार वा विषयादि से नष्ट मत कर (उत) और (वीरान्) विद्या और शरीर के बल से युक्त वीर पुरुषों को (मा) मत नष्ट कर।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जीवन पर्यन्त विद्वानों के मार्ग से चल के उत्तम अवस्था को प्राप्त हो और ब्रह्मचर्य के बिना स्वयंवर विवाह करके कभी न्यून अवस्था की प्रजा, सन्तानों को न उत्पन्न करें और न इन सन्तानों को ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान से अलग रक्खें।

[८७]

सभी पदार्थ शान्तिदायक हों

शं वातः शं हि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः ।
शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाभि शूशुचन् ॥
॥ ३५ । ८ ॥

पदार्थः—हे जीव ! (ते) तेरे लिये (वात) वायु (शम्) सुखकारी हो (घृणि) किरणयुक्त सूर्य (शम,हि) सुखकारी हो। (इष्टकाः) वेदी में चयन की हुई ईटें तेरे लिये (शम्) सुखदायिनी (भवन्तु) हो (पार्थिवासः) पृथिवी पर प्रसिद्ध (अग्नय.) विद्युत् आदि अग्नि (ते) तेरे लिये (शम्) कल्याणकारी भवन्तु होवे, ये सब (त्वा) तुझ को (मा, अभि, शूशुचम्) सब ओर से शीघ्र शोककारी न हों।

भावार्थः—हे जीवो ! वैसे ही तुम को धर्मयुक्त व्यवहार मे वर्तना चाहिये जैसे जीने वा मरने के बाद भी तुम को सृष्टि के वायु आदि पदार्थ सुखकारी हों।

[८८]

संसार रूपी नदी

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत
प्र तरता सखाय ।
अत्रा जहीमो ऽ शिवा ये ऽ
असञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥३५।१०॥

पदार्थ —हे (सखाय) मित्रो ! जो (अश्मन्वती) बहुत मेघो वा पत्थरो वाली सृष्टि वा नदी प्रवाह से (रीयते) चलती है उसके साथ जैसे (वयम्) हम लोग (ये) जो (अत्र) इस जगत् मे वा समय मे (अशिवा) अकल्याणकारी (असन्) हैं उन को (जहीम) छोडते हैं तथा (शिवान्) सुखकारी (वाजान्) अत्युत्तम अन्नादि के भोगो को (अभि उत तरेम) सब ओर से पार करें अर्थात् भोग चुके वैसे तुम लोग (सरभध्वम्) सम्यक् आरम्भ करो। (उत्तिष्ठत) उद्यत होओ और (प्रतरत) दु खो का उल्लघन करो।

भावार्थ —जो मनुष्य बडी नौका से समुद्र के जैसे पार हो वैसे अशुभ आचरणो और दुष्ट जनो के पार हो प्रयत्न के साथ उद्यमी होके मगलकारी आचरण कर के दु खसागर के सहज से पार होवें।

[८६]

दुरित निवारण

अपाधमप किल्बिषमपकृत्यामपो रपः ।
अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यं सुव ॥३५।११॥

पदार्थ.—हे (अपामार्ग) अपामार्ग औषधि जैसे रोगों को दूर करती वैसे पापों को दूर करने वाले सज्जन पुरुष ! (त्वम्) आप (अस्मत्) हमारे निकट से (अघम्) पाप को (अप, सुव) दूर कीजिये (किल्विषम्) मन की मलिनता को आप दूर कीजिये (कृत्याम्) दुष्ट क्रिया को (अप) दूर कीजिये (रपः) वाह्य इन्द्रियों के चञ्चलता रूप अपराध को (अपो) दूर कीजिये और (दुःष्वप्न्यम्) बुरे प्रकार की निद्रा में होने वाले बुरे विचार को (अप) दूर कीजिये ।

भावार्थ:—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जो मनुष्य जैसे अपामार्ग आदि औषधिया रोगों को निवृत्त कर प्राणियों को सुखी करती हैं वैसे आप सब दोषों से पृथक् होके अन्य मनुष्यों को अशुभ आचरण से अलग कर शुद्ध होते और दूसरों को करते हैं वे ही मनुष्य आदि को पवित्र करने वाले है ।

[९०]

दुष्टों को दूर हटाओ

अग्न ऽ आयूं षि पवस आसुवोर्जमिष च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ ३५ । १६ ॥

पदार्थ —हे (अग्ने) परमेश्वर वा विद्वन् ! आप (आयूंषि) अन्नादि पदार्थों वा अवस्थाओं को (पवसे) पवित्र करते (नः) हमारे लिये (ऊर्जम्) बल (च) और (इषम्) विज्ञान को (आसुव) अच्छे प्रकार उत्पन्न कीजिये तथा (दुच्छुनाम्) कुत्तो के तुल्य दुष्ट हिंसक प्राणियों को (आरे) दूर वा समीप मे (बाधस्व) ताडना विशेष दीजिये ।

भावार्थ —जो मनुष्य दुष्टों का आचरण और संग छोड के परमेश्वर और आप्त सत्यवादी विद्वान् की सेवा करते हैं वे धन धान्य से युक्त हुए दीर्घ अवस्था वाले होते हैं ।

[६१]

कुलीन देवियां

स्योना पृथिवी नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः। अप न शोशुचदघम् ॥
॥ ३५। २१ ॥

पदार्थः—हे (पृथिवी) भूमि के तुल्य वर्तमान क्षमा शील स्त्रि ! तू जैसे (अनृक्षरा) कण्टक आदि से रहित (निवेशनी) बैठने का आधार भूमि (स्योना) सुख करने वाली होती वैसे (नः) हमारे लिये (शर्म) सुख को (यच्छ) दे जैसे न्यायाधीश (नः) हमारे (अघम) पाप को (अप शोशुचत्) शीघ्र दूर करे वा शुद्ध करे वैसे तू अपराध को दूर कर।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो स्त्री पृथिवी के तुल्य क्षमा करने वाली, क्रूरता आदि दोषों से अलग बहुत प्रशंसित दूसरों के दोषों का निवारण करने हारी है वही घर के कार्यों में योग्य होती है।

[६२]

आत्म निरीक्षण

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो
वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु ।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ ३६ । २ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (मे) मेरे (चक्षुष) नेत्र की वा (हृदयस्य) अन्त:करण की (छिद्रम्) न्यूनता (वा) वा (मनस.) मन की (अतितृण्णम्) व्याकुलता है (तत्) उस को (बृहस्पति) बडे आकाश आदि का पालक परमेश्वर (मे) मेरे लिये (दधातु) पुष्ट व पूर्ण करे (य.) जो (भुवनस्य) सब ससार का (पति.) रक्षक है वह (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी (भवतु) होवे।

भावार्थः—सब मनुष्यो को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना और आज्ञापालन से अहिंसा धर्म को स्वीकार कर जितेन्द्रियता को सिद्ध करें।

[६३]

मित्र दृष्टि

दृते दृ५ह मा मित्रस्य मा चक्षुषा
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ ३६ । १८ ॥

पदार्थ—हे (दृते) अविद्या रूपी अन्धकार के निवारक जगदीश्वर वा विद्वन्! जिससे (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (मा) मुझ को (सम्, ईक्षन्ताम्) सम्यक् देखें (अहम्) मैं (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणियों को (समीक्षे) सम्यक् देखूं, इस प्रकार सब हम लोग परस्पर (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (समीक्षामहे) देखें, इस विषय में हम को (दृ ह) दृढ़ कीजिये।

भावार्थ—वे ही धर्मात्माजन हैं जो अपने आत्मा के सदृश्य सम्पूर्ण प्राणियों को मानें, किसी से द्वेष न करें और मित्र के सदृश्य सब का सदा सत्कार करें।

[६४]

निर्भयता

यतो यत समीहसे ततो नो ऽभयं कुरु ।
श न कुरु प्रजाभ्यो ऽभयं न पशुभ्य ॥
॥ ३६ । २२ ॥

पदार्थ —हे भगवन् ! ईश्वर ! आप अपने कृपा कटाक्ष से (यतोयत) जिस जिस स्थान से (समीहसे) सम्यक चेष्टा करते हो (तत) उस उस से (न) हम को (अभयम्) भय रहित (कुरु) कीजिये (न) हमारी (प्रजाभ्य) प्रजाओ से और न हमारे (पशुभ्य) गौ आदि पशुओ से (शम्) सुख और (अभयम्) निर्भय (कुरु) कीजिये ।

भावार्थ —हे परमेश्वर ! आप जिस कारण सब मे अभिव्याप्त है इससे हम को और दूसरो को सब कालो और सब देशो मे सब प्राणियो से निर्भय कीजिये ।

[६५]

तू ही मां तू ही पिता

पिता नोऽसि पिता नो बोधि
नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः।
त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम पुत्रान् पशून् मयि धेहि।
प्रजामस्मासु धेह्यरिष्टाहꣳ सह पत्या भूयासम् ॥
॥ ३७ । २० ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आप (नः) हमारे (पिता) पिता के समान (असि) है (पिता) राजा के तुल्य रक्षक हुए (न) हम को (बोधि) बोध कराइये (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे आप (मा) मुझ को (मा,हिंसी) मत हिंसा युक्त कीजिये (त्वष्टृमन्ता) बहुत स्वच्छ प्रकाश रूप पदार्थों वाले हम (त्वा) आप से (सपेम) सम्बन्ध करें। आप (पुत्रान्) पवित्र गुण कर्म स्वभाव वाले सन्तानों को तथा (पशून्) गौ आदि पशुओं को (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कीजिये तथा (अस्मासु) हम में (प्रजाम्) प्रजा को धारण कीजिये जिस से (अहम्) मैं (अरिष्टा) अहिंसित हुई (सहपत्या) पति के साथ (भूयासम्) होऊं।

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! आप हमारे पिता स्वामी, बन्धु, मित्र और रक्षक हैं इससे आपकी हम निरन्तर उपासना करते हैं। हे स्त्रियो ! तुम परमेश्वर की ही उपासना नित्य किया करो जिस से सब सुखों को प्राप्त होओ।

[६६]

नारी महिमा

अदित्यै रास्नासी द्राण्या ऽ उष्णीष ।
पूषासि घर्माय दीप्व ॥ ३८ । ३ ॥

पदार्थ—हे कन्ये ! जो तू (अदित्यै) नित्य विज्ञान के (रास्ना) देने वाली (असि) है (इ द्राण्यै) परमैश्वर्य करने वाली नीति के लिये (उष्णीष) शिरोवेष्टन पगडी के तुल्य (पूषा) भूमि के सदृश्य पोषण करने हारी (असि) है सो तू (घर्माय) प्रसिद्ध अप्रसिद्ध मुख देने वाले यज्ञ के लिये (दीप्व) दान कर।

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचक लुप्तोपमालकार है। हे स्त्रि ! जैसे पगडी आदि वस्त्र सुख देने वाले होते हैं वैसे तू पति के लिये सुख देने वाली हो।

[९७]

सब की उन्नति

घर्मैतत्ते पुरीष तेन वर्द्धस्व चा च प्यायस्व।
वर्द्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ॥३८।२१॥

पदार्थ —हे (घर्म) अत्यन्तपूजनीय सब ओर से प्रकाशमय जगदीश्वर! वा विद्वन्! जो (एतत्) यह (ते) आप का (पुरीषम्) व्याप्ति वा पालन है (तेन) उससे आप (वर्द्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हूजिये (च) और दूसरो को बढाइये। आप स्वय (आ, प्यायस्व) पुष्ट हूजिये (च) और दूसरो को पुष्ट कीजिये, आप की कृपा वा शिक्षा से जैसे हम लोग (वर्द्धिषीमहि) पूर्ण वृद्धि को पावें (च) और वैसे ही दूसरो को बढावें (च) और जैसे हम लोग (आ, प्यासिषीमहि) सब ओर से बढें वैसे दूसरो को निरन्तर पुष्ट करें वैसे तुम लोग भी करो।

भावार्थ —इस मन्त्र मे श्लेष और वाचकलुप्तोपमा अलकार है। हे मनुष्यो! जैसे सर्वत्र अभिव्याप्त ईश्वर ने सब की रक्षा वा पुष्टि की है बढे हुए पुष्ट हम लोगो को चाहिये कि सब जीवो को बढावें और पुष्ट करें।

[६८]

मुझे भी तेजस्वी बना

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि ।
तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥ ३८ । २५ ॥

पदार्थ —हे परमेश्वर ! जो आप हमारे आत्माओं में (एध) प्रकाश करने वाले इन्धन के तुल्य प्रकाशक (असि) हैं (समित्) सम्यक् प्रदीप्त समिधा के समान (असि) हैं (तेज) प्रकाशमय बिजुली के तुल्य सब विद्या के दिखाने वाले (असि) हैं सो आप मयि मुझ मे (तेज) तेज को (धेहि) धारण कीजिये। आप को प्राप्त होकर हम लोग (एधिषीमहि) सब ओर से वृद्धि को प्राप्त होवें।

भावार्थ —हे मनुष्यो ! जैसे इंधन से और घी से अग्नि की ज्वाला बढती है वैसे उपासना किये जगदीश्वर से योगियो के आत्मा प्रकाशित होते हैं।

[६६]

मृत्यु के पश्चात्

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च।
सासह्वांश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥ ३६ । ७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! मरण को प्राप्त हुआ जीव (स्वाहा) अपने कर्म से (उग्र.) तीव्र स्वभाव वाला (च) शान्त (भीम.) भयकारी (च) निर्भय (ध्वान्तः) अन्धकार को प्राप्त (च) प्रकाश को प्राप्त (धुनिः) कांपता (च) निष्कम्प (सासह्वान्) शीघ्र सहनशील (च) न सहने वाला (अभियुग्वा) सब ओर से नियमचारी (च) सब से अलग और (विक्षिपः) विक्षेप को प्राप्त होता है।

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो जीव पापाचारी है वे कठोर जो धर्मात्मा है वे शान्त जो भय देने वाले वे भीम शब्दवाच्य जो भय को प्राप्त है वे भीत शब्दवाच्य जो अभय देने वाले है वे निर्भय, जो अविद्यायुक्त है वे अधकार से ढपे जो विद्वान् योगी हैं वे प्रकाश युक्त, जो जितेन्द्रिय नहीं है वे चञ्चल, जो जितेन्द्रिय है वे चञ्चलता रहित अपने अपने कर्म फलों को सहते भोगते संयुक्त विक्षेप को प्राप्त हुए इस जगत् में नित्य भ्रमण करते हैं ऐसा जानो।

त्याग पूर्वक उपभोग

ईशा वास्यमिदᳬ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥
॥ ४०। १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य! तू (यत्) जो (इदम्) प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्यन्त (सर्वम्) सब (जगत्याम्) प्राप्त होने योग्य सृष्टि में (जगत्) चराचर मात्र (ईशा) सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त सर्वशक्तिमान् परमात्मा से (वास्यम्) आच्छादन करने योग्य अर्थात् सब ओर से व्याप्त होने योग्य है। (तेन) उस (त्यक्तेन) त्याग किये हुए जगत् से (भुञ्जीथा) पदार्थों के भोगने का अनुभव कर किन्तु (कस्य, स्वित्) किसी के भी (धनम्) वस्तु मात्र की (मा) मत (गृधः) अभिलाषा कर।

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर से डरते हैं कि यह हम को सदा सब ओर से देखता है, यह जगत् ईश्वर से व्याप्त और सर्वत्र ईश्वर विद्यमान है इस प्रकार व्यापक अन्तर्यामी परमात्मा का निश्चय करके भी अन्याय के आचरण से किसी का कुछ भी द्रव्य ग्रहण नहीं किया चाहते वे धर्मात्मा होकर इस लोक के सुख और परलोक में मुक्ति रूप सुख को प्राप्त करके सदा आनन्द में रहें।

[६६]

मृत्यु के पश्चात्

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च ।
सासह्वांश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥ ३६ । ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! मरण को प्राप्त हुआ जीव (स्वाहा) अपने कर्म से (उग्र) तीव्र स्वभाव वाला (च) शान्त (भीम.) भयकारी (च) निर्भय (ध्वान्तः) अन्धकार को प्राप्त (च) प्रकाश को प्राप्त (धुनिः) कांपता (च) निष्कम्प (सासह्वान्) शीघ्र सहनशील (च) न सहने वाला (अभियुग्वा) सब ओर से नियमधारी (च) सब से अलग और (विक्षिपः) विक्षेप को प्राप्त होता है।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जीव पापाचारी हैं वे कठोर जो धर्मात्मा हैं वे शान्त जो भय देने वाले वे भीम शब्दवाच्य जो भय को प्राप्त हैं वे भीत शब्दवाच्य जो अभय देने वाले हैं वे निर्भय, जो अविद्यायुक्त हैं वे अंधकार से ढंपे जो विद्वान् योगी हैं वे प्रकाश युक्त, जो जितेन्द्रिय नहीं हैं वे चञ्चल, जो जितेन्द्रिय हैं वे चञ्चलता रहित अपने अपने कर्म फलों को सहते भोगते संयुक्त विक्षेप को प्राप्त हुए इस जगत् में नित्य भ्रमण करते हैं ऐसा जानो।